श्रीगंगोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यम् ।

(श्री गोमुखीयात्रा गंगास्तोत्र संग्रह सहितम्)

भाषानुवाद समलंकृतम्



ग्रन्थकारः—पूज्यपाद श्रीस्वामी तपोवनम्

प्रकाशकः—पं० वल्लभराम शर्मा, वैद्यराजः

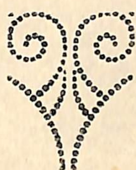
(तृतीयावृत्तिः)

दयाल प्रिंटिंग प्रेस देहली

श्रीगंगोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यम् ।

(श्री गोमुखीयात्रा गंगास्तोत्र संग्रह सहितम्)

भाषानुवाद समलंकृतम्

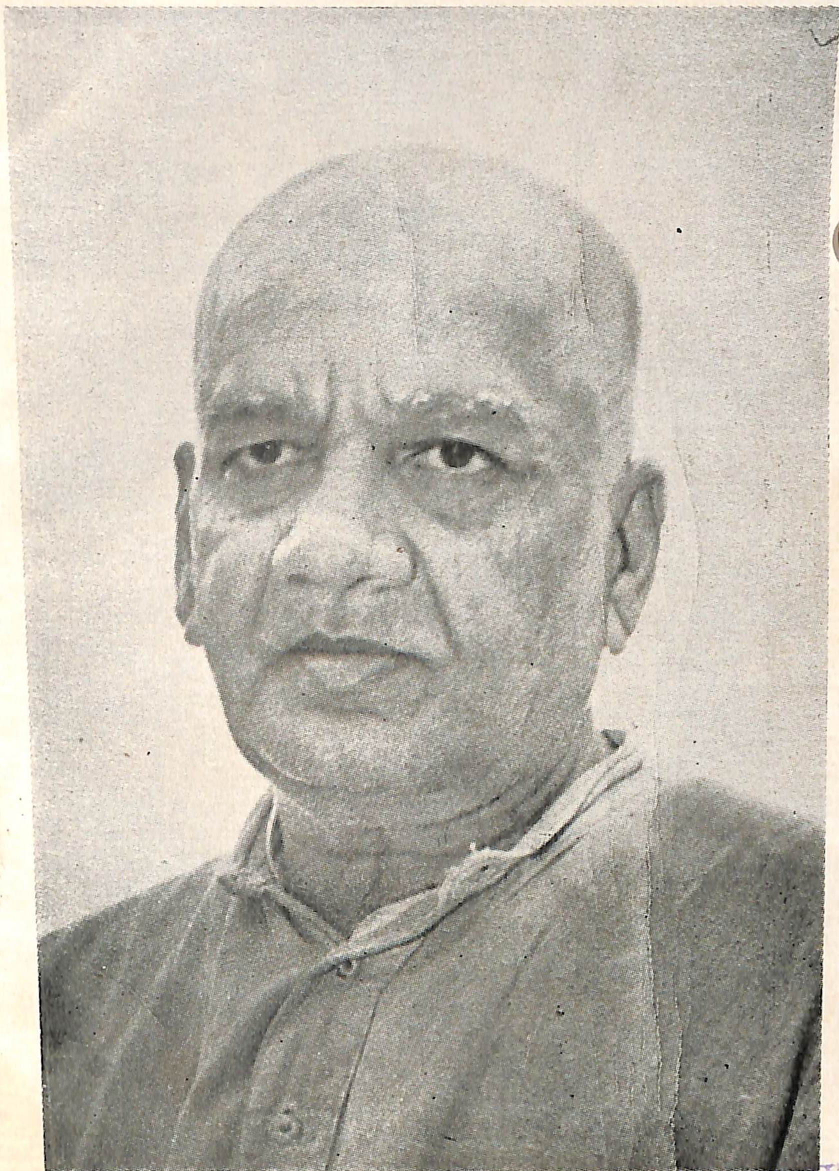


ग्रन्थकारः—पूज्यपाद श्रीस्वामी तपोवनम्

प्रकाशकः—पं० वल्लभराम शर्मा, वैद्यराजः

(तृतीयावृत्तिः)

दयाल प्रिंटिंग प्रेस, देहली



श्री स्वामी तपोवनम
(१९५०)

प्राक्कथन

अयि पाठकगण !

अचलराज श्री हिमालय के चिरकाल निवासी सुप्रसिद्धनामा ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ स्वामी तपोवनजी महाराज की ये दो तीन कृतियां श्री गङ्गाजी की कृपा से पुनरपि आपके सामने रखनेका सुयोग मिला है। सुशिक्षित विद्वज्जनोंसे पूरित किसी आधुनिक नगरको विभूषित करनेका अधिकार रखते हुए भी श्री स्वामीजी विविक्त दुर्गम हिमालय प्रदेशको ही प्यार करते हैं। मेरा विश्वास है, कि यह कोई पूर्व कर्म प्रेरणाका फल होगा। सन् १९४१ ई० के अगस्त के महीने में साक्षात् श्री गोमुख के पास भूर्जवनोंसे परिवृत एक विशाल मंजुल मैदानमें श्री स्वामीजीके दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। स्वामीजी उस समय उधर निवास करते थे। वहां पर श्री स्वामीजी के मित्र वर्ग थे भेड़, बकरी चराने वाले, कोई अपरिष्कृत पर्वतीय लोग। स्वामीजीको अपनी उच्च सभ्यता, तथा उन्नत दार्शनिक विद्वत्ताका अभिमान छोड़कर उन लोगों के साथ बड़े प्रेम एवं समभावसे सहोदरके समान बातचीत आदि व्यवहार करते हुए मैंने देखा। हमने तो मनमें कहा—यह है शुद्ध साधुता! सभ्यता तथा विद्वत्तासे परे साधुता भी एक मधुर अमूल्य चीज है। "विद्वान् न भाति पुरुषेषु निरक्षरेषु' यह न्याय अक्षरशः सत्य है। तथापि प्रेमभाव ऐसा एक मोहक पदार्थ है, जो पशु पक्षियोंके ऊपर भी अपना

प्रभाव जमाता है। हृषीकेश में एकबार एक उच्च शिक्षित महात्मा ने श्रीस्वामीजी से इस प्रकार पूछा था—"गंगोत्तरी गोमुख में जाकर निवास करनेका क्या लाभ है! आपके चिरकालका अनुभव बताइये। मन सब जगह मन ही है। राग, द्वेष, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, पाखण्डता, उद्दण्डता आदि चित्त दोष कहीं जाने पर भी निवृत्त नहीं होते। वे केवल विचार और वैराग्य से निवृत्त होते हैं। इसलिए यहीं बैठकर भी विचार एवं वैराग्यके द्वारा ज्ञानका संपादन तथा ज्ञानकी रक्षा भी पुरुष कर सकते हैं।" स्वामीजीने परिमित शब्दोंमें इस प्रकार उत्तर दिया, "आपका मत बिलकुल ठीक है। मैं भी उसका अनुमोदन करता हूं। परन्तु मैं तो केवल प्रकृति सौन्दर्यके तथा उसके द्वारा अनायासेन परमेश्वर सौन्दर्यके नित्यनिरन्तर रसास्वादन में उत्कण्ठित होकर प्रतिवर्ष उस प्रान्तमें जाया करता हूं। और अलसता एवं चंचलताको छोड कर सश्रद्ध अध्यात्म साधना करने वाले अधिकारी पुरुषों के लिए भी अपनी अलौकिक शान्ति महिमा, एवं आध्यात्मिक वातावरणसे विश्व विख्यात यह उत्तराखण्डका भी उत्तराखण्ड महान सहायक तथा लाभदायक होता है।" श्री स्वामीजी के इस प्रकार के नाना लोकोत्तर चरित एवं उपदेशोंका वर्णन करनेका यह अवसर नहीं है। संक्षेपसे इतना मात्र कहना चाहता हूं, कि श्री स्वामीजी गंगोत्तरी गोमुख प्रान्तका अत्यधिक प्रेमादर करते हैं, और उसके प्रमाण हैं ये छोटी सुन्दर सरस कृतियां। बुद्धि पूर्वक ही हमने इन ग्रन्थोंको "सुन्दर, सरस" दो विशेषण दिये हैं। क्योंकि साहित्य गुणोंसे रहित, रसशून्य, केवल

चार पादवाले पदसमुदाय कविकर्ममर्मज्ञ पण्डितोंकी मण्डलीमें 'चतुष्पात्' नामसे ही विदित है; सुन्दर, सरस कृति या रचनाके नामसे तभी श्लाघित हुआ करते यदि ग्रन्थ साहित्य गुण युक्त एवं रस पूरित हो।

हिमालय स्वयं ही एक महान विभूति है। अतः वह ईश्वरांश ही है। इसमें फिर जो जगदेक वन्द्या, दिव्य वैभववती, भगवती भागीरथी श्री गंगाजी अपने शुद्ध, अकलुष सर्वाङ्ग सुन्दर बालिका रूपसे बहती हैं, और इस कारणसे ही जो अतिशय पाप नाशिनी है, उनके माहात्म्यका वर्णन ही क्या करना ?

धर्मकी दृष्टि जिन्हें प्राप्त नहीं, ऐसे आजकलके अपने लोगभी सृष्टि सौन्दर्यको दृष्टिसे भी यदि कोई सर्वोत्तम वस्तु देखना चाहें तो गोमुख का—जहांसे गंगा निकलनी शुरु होती है उस अद्भुत स्थानका—दर्शन करना जरूरी है। उस अप्रमत सृष्टि सौन्दर्यके दर्शनसे अपने आप कैसे भी शून्य हृदयवाले पुरुषके भाव बदल जायेंगे तो फिर धर्म भावना जिसमें है, उसकी कथा ही क्या कहना ? धर्म बुद्धि से श्रद्धापूर्वक तीर्थोंमें भ्रमण, स्नान, भजन और दान आदि परम्परागत अनूषत सत्कर्मोंके अनुष्ठानको किसी अधिकारियोंके लिये किसी सीम तक कल्याण के साधन मान करके ही अद्वैत ब्रह्मवादी होते हुए भी विचार-कला कोविद श्री स्वामीजीने इन ग्रंन्थोंकी रचना की है।

प्रथमावृत्ति झटपट खतम होगयी और इस दूसरी आवृत्ति की मांग आनेसे इसे फिर प्रकाशित करनेका भाग्यवान तथा आपके अनुग्रह का भाजन भी हुआ हूं।

श्री गंगोत्तरी तथा गंगोत्तरी भक्त श्री स्वामीजी की जय !

आपका विधेय

अहमदाबाद
ता० १५-२-४६ } पं० वल्लभराम शर्मा, वैद्यराज
आयुर्वेदाचार्य, वनस्पति शास्त्री

तीसरी आवृत्तिकी आवश्यकता हुई। ग्रंथ की उपयोगिता और सौन्दर्य बढ़ाने के लिये ग्रन्थकार पूज्य श्री स्वामीजी से ही रचित कुछ नये पद्यों को ग्रन्थमें तत्र तत्र मिलाकर इसबार इसे कुछ वर्धितरूपसे प्रकाशित कर रहा हूं।

अहमदाबाद
२५-२-५३ } पं० वि. आर. शर्मा

❀ वनवापी ❀

पश्यन्तु केचिदमलं जलमेव गंगे—
त्यन्ये वयन्तु भवयन्त्रविमुक्तिहेतुः।
श्रीमूलशक्ति रखिलेश्वररूपरूपि—
एयानन्दकन्दमिति नित्यमुपास्महे त्वाम् ॥

(गंगास्तोत्रम्)

अथ किंलक्षणकं पवित्रं क्षेत्रमित्याकांक्षायामिदं वदामो यद्-कृत्स्नेनैव पवित्रभावभावकत्वं तल्लक्षणमिति। पवित्रेषु च भावेषु भावुकतमः खलु पारमेश्वरो भाव इति सर्वसम्प्रतिपन्नम्। तथा चैकान्ततयैतल्लक्षणलक्षितानि त्रिपथगेत्तरादी न्युत्तराखण्डमूर्द्धन्यानि क्षेत्राणीति लक्षणप्रमाणाभ्यां पावित्र्यसिद्धिस्तेषाम्। ननुलक्षणमिदमलंभवदोष विदूषितं, यतस्तत्रत्याना मविशेषतया निरवशेषाणामपि पुरुषाणां, तथा शार्दूलभाल्लूकप्रभृतीनां तिरश्चीनानाञ्च पवित्रभावभाविता प्रसज्यत इति चेत्, प्रसज्यतां नाम! ततः किं बिभेति भवान्? अवश्यमस्ति हि गंगोत्तरादिपुण्यक्षेत्रवर्तिनां सर्वेषामपि प्राणिनामनितरसाधारणः पवित्र भावः। किन्तु स्यादयं प्रौढवादः। तथाऽपि क्रिया खलु करण कारकमपि समपेक्षते स्वजनुषि, न केवल करणं, किन्तु पटुकरणमपेक्षत इति शास्त्रकृत्समयः। तथा च सति, यदि करणापटुतया सम्यगिव यः कश्चिद्वस्तुनिष्ठगुणग्रहणासमर्थस्तर्हि गुणविरहविशिष्टं वस्तु कथं स्यात्? हन्त! हन्त! यदि पेचको न पश्यति प्रचण्डमार्तण्डमण्डल गतं प्रभापटलं, किमु तत्तमोमण्डलमतः सम्पद्येत? न कदापि। एवमेव हि यदि योग्यकरणनिर्धन-

तथा नालं कश्चिद्गंगोदयादिस्थानानां पावित्र्यगुणमप्रतिष्टं प्रमास्वादयितुं, तर्हि तद्देशानिष्ठनैसर्गिकतद्गुणविरहः कथमुपपद्येत ?

अतश्च नूनमनवद्यलक्षणसमन्वयात्, अर्थतः सुखेनाध्यात्मिकादिमेध्यभावजनकत्वगुणयोगादिदं जह्नुजोद्वारं पूतात्पूततरं क्षेत्रमित्यत्र नास्ति संशीतिलेशः। अहो ? खलु दिव्येन प्राकृतिकसुषमासौष्ठववितानेन, प्रशान्तैकान्ततरेण च निजादिक् चक्रवालान्तरालेनाथ च पतितपावन्या नित्यनिर्मल निरर्गलसलिल-प्रवाहेण, ततश्च परितः शश्वत् पारमेश्वरभावप्रसारणैर्भवनैरेतदतुलित माहात्म्यं जेजीयतेऽस्मिन् जगति। अतएव च पृथिवीपृष्ठनिष्ठानामखिलपुण्यस्थलीनां गणनाप्रसंगे कुण्ठकनिष्ठिकामतिरभसरं हसाऽधितिष्ठतीयं गंगाशरःस्थलीति नश्चप्रचमेतत्। अपि चेह बहुषु सुसम्मतेष्वपि पुण्यक्षेत्रेषु, हन्त ! हन्त कालस्यन्दनमधिरूढाया अपावित्र्यपिशाचिकाया निजवयस्याजनैर्पास्यमानाया महतोल्लासयात्राकोलाहलेन, बीभत्सतरेण चाट्टहासेन, समन्ततो मुखरीक्रियमाणेषु, ज्योत्स्नासंकाशमन्दस्मितविकसितमुखी सत्त्वसंहनना श्रीपावित्र्यदेवताऽद्याप्यक्रम्यमाना शान्त्यादिस्वसखीसंजुष्टाऽभिरक्षत्यकुतोभयमिमां भगीरथतपोभुवमित्यहो ! महानस्याया अनुग्रहः।

तत्तादृशगुणगरिम्णो गंगोत्तरस्य, तथाऽन्यासामुदग्देशस्योदक्सीमावर्तिनीनां पुण्यवसुन्धराणां सौम्यकाशी, हृषीकेश बदरीश, कैलास शैलप्रमुखाणां कर्तुमुपकान्ता पौनःपुन्येन तीर्थयात्रामुरुतनूरुहाणां जातकर्ममहोत्सवात् प्रागेव दक्षिणदेशस्य दक्षिणसीमातश्चेतःस्यन्दनमधिरोह द्दूरतमाभिर्मद्गुत्सु शब्दावगततत्तत्प्रभावमहोदयैः। मनोमुकु-

जिघ्रन्तु तत्रभवन्तः। तत्फलं तु स्वयं श्रीमन्त एव हि जानन्तीत्युपरम्यत इति शम्।

यत्सूत्रयन्त्रितं विश्वं नरीनर्ति जगत्त्रयम्।
सन्तस्तमेव पृच्छन्तु यदत्र स्खलितं मम॥

इति

उत्तरकाशी
७-१२-१९३६

निःस्वानामस्वामी
स्वामी तपोवनम्

...स्य न्यायर
परिचयतोऽप्येषा न गच्छति चिरन्तनता
तर्हि वस्त्ववज्ञातं स्यात्।

"क्षणे क्षणे य
तदेव रूपं रम

इति हि माघकवेर्भणि
प्रतिक्षणमिव नवीनता मु ढौकमा
मवहेलनं वा कथं स्यादतिसंगतोऽ
मानेनैकदा वर्षासु तस्या आराधन

॥ श्रीहरिः ॥

भूमिका *

इस शोक मोह संतापपूर्ण संसारमें यदि त्रितापनाशिनी कलकलनिनादिनी मुनिमनहारिणी भगवती भागीरथी न होती, तो हम सर्व साधनशून्य पामर प्राणियों के लिये यह पृथ्वी नरकके समान बन जाती। इस सर्व साधनविहीन कलिकालमें भगवती सुरसरि ही हम पापियोंका एक मात्र सहारा है। जिस संसारमें पग पगमें पाप होने की संभावना है, श्वास प्रश्वासमें भी जहां हिंसा है, उस जगतमें पापसे पैदा हुआ यह प्राणी पुण्यप्रद कार्य करही कैसे सकता है? किन्तु धन्य हैं वे राजर्षि भगीरथ जिनके चिर कालके तपसे लोकपितामह भगवान ब्रह्मदेव प्रसन्न हुए और जिन्होंने इस पापपूरित धराधामपर पापोंको समूल नष्ट करनेवाली देवसरिताके त्रिताप नाशक सुधाका सबके लिये सुलभ बना दिया। सुना है कल्पतरुके नीचे बैठनेसे सभी प्रकारकी वांछायें पूर्ण होजाती हैं, किन्तु उस कल्पतरुके दर्शन कितने लोगोंने किये हैं? सुना है शशि सम्पूर्ण संतापोंको मेंट देते हैं, किन्तु विरहिणी सदा शशिको खरीखोटी ही सुनाती रहती है, फिर शशि बेचारे एक दिन पूर्ण रूपसे दर्शन देते हैं। तापको मेटनेवाले शशि तो सालमें एकदिन ही शारदीय पूर्णिमा के दिन उदित होते हैं। किन्तु ये भागीरथी सुधासरिता तो सदा संसारी-संतापोंसे संतप्त प्राणियोंके पापोंका बिना

* प्रथमावृत्तिकी।

विश्रामके निरंतर धोती रहती हैं। इनके यहां भेदभाव नहीं, ऊँच नीचका ध्यान नहीं; समय असमयका विचार नहीं; पात्र अपात्र की परिभाषा नहीं; छोटे बड़े पापोंका हिसाब नहीं। यहाँ तो "दरस परस अरु मज्जन पाना। कटहि पाप कहैं वेद पुराना।" वेदपुराण इसके साक्षी हैं। दर्शन करना दूरकी बात है। पुराण तो पुकार पुकार कर कह रही है :—

"गंगा गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥"

कैलासपर स्थित शिवजीकी जटाओंसे बहकर वे बर्फके नीचे २ बदरिकाश्रमके समीपस्थ एक पर्वतपर आती है, उस स्थानको 'गोमुख' कहते हैं। वहां गौके मुखके समान बर्फ की गुफा है बस उसी गुफामेंसे सर्व प्रथम श्रीगंगाजीके दर्शन होते हैं। वहांसे १३-१४ मील नीचे गंगोत्रि स्थान है; जहांपर बैठ कर राजर्षि ने घोर तपस्या की थी। वहीं गौरीकुण्ड है; और वहींपर वे अपने दिव्यस्वरूपसे सदा विचरण करती रहती हैं, इसीलिये उस स्थानका नाम गंगोत्री है। गंगोत्रीका प्राकृतिक दृश्य कितना मनोरम है, कितना नयनाभिराम है, कि उसका वर्णन करना इस निर्जीव लेखनीकी शक्तिके बाहिरकी बात है। चारों ओरकी सुन्दर हरियाली, भोजपत्र और देवदारु के दर्शनीय और नयनाभिराम तरुओंकी सघन पंक्तियां श्वेतरजतके समान स्वच्छ और चमकीले पर्वत दर्शककी दृष्टिको अतृप्त बनाते रहते हैं; वहाँ खड़े होते ही हृदय थिरकने लगता है, मनमें मीठी २

हिलोरें उठने लगती हैं; अहा! उस अनुपम दृश्य और अकथनीय सौन्दर्य-राशिका वर्णन कौन करने में समर्थ हो सकता है? बस इतना ही कहा जा सकता है, "गिरा अनयन नयन बिनु बानी।"

चिरकालसे मेरी अभिलाषा थी, कि जहां श्री गंगाजीका नित्य निवास है, जहां भगीरथकी तपोभूमि है और जहां गौरी अपनी सखियोंके सहित सदा विचरण करतीं हैं; उस अनुपम स्थानका दर्शन करके अपने नेत्रोंको कृतार्थ करूं और वहां स्नान करके अपने पाप तापोंसे मुक्त होउं। कई बार संयोग जुटा किन्तु बीचमें ही छिन्नभिन्न हो गया, क्योंकि वहां जानेके लिये अनन्त पुण्योंकी आवश्यकता है।

पारसाल यह संयोग बन गया। हरिद्वार तक तो कई बार जाना पड़ा है और वहां चिरकाल तक निवास भी किया है। हरिद्वारसे ही श्री गंगाजी अपने पिता गिरिराजकी गोदीसे उतर कर पृथ्वीपर पधारी हैं; अतः हरिद्वार ही इनका आदिस्थान समझा जाता है। प्रयागमें श्री यमुनाजीसे मिली हैं और बड़ी हुई हैं, यह इनका मध्य स्थान है। और गंगासागरमें जाकर ये समुद्रके साथ एकीभूत हो गई हैं, अतः यह इनका अंतिम स्थल है।

हरिद्वारमें गंगाजीने अपना बालचापल्य कुछ कम कर दिया है. वे सयानी बालिकाकी तरह कुछ गंभीर होगई हैं, किन्तु स्वभावमें चुलबुलापन वहां भी मौजूद है। हृषीकेशमें यहांसे कुछ

चापल्य विशेष है; ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाइये, त्यों ही त्यों गंगा जीके बालसुलभ चापल्यके साथ तुम्हारा मन नृत्य करने लगेगा। देवप्रयागमें अलकनंदाके साथ इनकी कुस्ती देखकर तो मन प्रेमानन्दमें विभोर हो जाता है।

उत्तरकाशीमें गंगाजीकी छटा विचित्र ही है। ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाइये, इनके जलमें शीतलता, स्वच्छता, चंचलता और चपलता बढ़ती ही दिखाई देगी। जहां पर वरुणा और असीके संगम हुए हैं, वे दोनों स्थान परमरम्य दर्शनीय और मनमोहक हैं। आगे 'भास्कर प्रयाग" (भटवाटी) आ जाता है। ऐसी किंवदन्ती है, कि आचार्यचरण भगवान आदि शंकराचार्यसे पहले और पीछे भी बहुत कालतक कोई भी यात्री गंगोत्रातक नहीं पहुंचता था। भटवाटीमें ही श्रीभागीरथीजी का पूजन होता था। वहींसे दर्शन करके यात्री लौट आते थे। भटवाट से आगे हरसल (हरिप्रयाग) तकका दृश्य तो मनुष्यकी कल्पनाके बाहिर है। यहांपर गंगाजीका प्रयाग का सा दृश्य है, यहाँ न छोटी बालिकाकी तरह चिल्लाती है, न चपलता करती है। हरसलमें कई गंगायें आकर भागीरथीमें मिली हैं। वह दृश्य लेखनीसे अंकित किया ही नहीं जा सकता। हरसलसे एक प्रकारसे गंगोत्रा ही आ जाती है। वहांसे दो मील आगे धराली है। यह स्थान बड़ा ही रमणीय है। यहांसे तीन मील पर जह्नुऋष का स्थान है। अकस्मात् सामने हर हर करती हुई भूटानी गगा दिखाई देती है, जिसको स्वामीजीने इस ग्रन्थमें "जह्नु गंगा" नामसे

वर्णन किया है। ये आकार प्रकारमें भागीरथीजीसे बड़ी है, इनका जल विचित्र है, गंगाजीमें मिलते ही वह उन्हींके रूप रंग और आकार प्रकारका बन जाता है। यहींसे भैरवघाटीको चढ़ाई आरंभ होती है। यहां सिदूरिये रंग का एक जलका स्रोत है, ऊपर भैरोंजीकी विकराल मूर्ति है, जो दर्शकोंको सान्त्वना देती है। बस, अब क्या है, अब तो बाजी मार ली, ५-६ मील दौड़ते दौड़ते चलिए, अब न चढ़ाई न उतराई, देशमें सड़की तरह कूदते चलिये। दूरसे ही बरफोंसे ढके चाँदीके पर्वत देखने लगेंगे। हर हर हू हू के शब्दोंसे घबड़ाइये नहीं। यह गौरीकुंड का शब्द है। पचासों गज नीचे एक कुंड है, उस कुंडमें गंगाजी की समस्त धारा बड़े जोरोंसे शब्द करती हुई चिल्लाती और किलकारती हुई नीचे गिरती है। वह दृश्य बस वही है, उसको उपमा क्या दें। किंवदन्ती है कि गौरीकुण्डके नीचे एक शिवलिंग है, समस्त धारा उसी शिवलिंगके ऊपर गिरती है, इसी लिये गौरीकुण्डसे आगेके जलको श्रीरामेश्वरनाथजी ग्रहण नहीं करते। गौरीकुंड ही गंगोत्री है; यहांसे थोड़ी दूर पर श्रीगंगाजीका एक विशाल मंदिर है; इसके भीतर अष्टधातुको श्रीभागीरथीजीकी मूर्ति है; यमुना सरस्वती और अन्नपूर्णा भी विराजमान हैं; भगीरथजी और श्रीशंकराचार्यजी भी उपस्थित हैं; इन्हीं गंगाजीके दर्शन करके गंगोत्रीका यात्री अपनी यात्राकी सफलता समझता है।

यहां बड़े २ तितिक्षु त्यागी और विरक्त महात्मा रहते हैं, जो गुफाओंमें निवास करते हैं। हमें तीन महात्मा ऐसे मिले, जिनके

दर्शनोंसे चित्तमें वैराग्य हुआ। उनमें एक तो इस ग्रन्थके रचयिता महात्मा पूज्यपाद स्वामी श्रीतपोवनजी महाराज हैं, आपका शरीर दक्षिणकी तरफका है, अंग्रेजी और संस्कृतके बड़े विद्वान हैं। स्वभावमें बिलकुल बालकपन है। बात २ पर खिलखिलाकर हँसते हैं। आपकी टूटीफूटी हिन्दी इतनी सुन्दर और आनन्ददायिनी होती है कि श्रोता मंत्रमुग्धकी तरह सुनता रहता और सुनते २ अघाता नहीं। लगभग १२-१४ वर्षसे आप इधर उत्तराखंडमें ही निवास करते हैं। आप जैसे त्यागी तितिक्षु विद्वान हैं वैसे ही आप संस्कृतके सुकवि भी हैं। आपने श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्र, श्रीबदरीशस्तोत्र आदि ३.४ सुन्दर भक्ति-ज्ञानमय ग्रन्थ भी बनाये हैं। अबतक श्रीगंगोत्री क्षेत्रके माहात्म्य के सम्बन्धमें कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं था। स्वामीजीने इस अनुपम ग्रन्थकी रचना करके श्रीगंगोत्रीके यात्रियोंके साथ बड़ा ही उपकार किया है। आशा है यह ग्रन्थ गंगाजी और गंगोत्रीजीके भक्तोंके लिये कंठाहारका काम देगा और यात्रियोंके लिये यह पथ प्रदर्शक होगा। इस ऐसे सुन्दर और उपयोगी ग्रन्थका भाषानुवाद करके और उसके साथ इन पंक्तियोंको लिखकर मैं अपनेको सौभाग्यशाली समझता हूं। श्री गंगोत्रीके पंडाओं तथा यात्रियोंसे मेरी सविनय प्रार्थना है, कि इस ग्रन्थरत्नका अधिकसे अधिक प्रचार करें।

संकीर्तन-भवन
(झूसी (प्रयाग)
ज्येष्ठ शु० ३ - १९९२

भक्तचरण चंचरीक
प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

❁ मङ्गलाचरणम् ❁

जय जय जगदम्ब ! श्रीगल श्रीजटायां
जय जय जयशीले ! जह्नुकन्ये नमस्ते ।
जय जय जलशायिश्रीमदङ्घ्रिप्रसूते !
जय जय जय भव्ये ! देवि भूयो नमस्ते ॥१॥

त्रिपथपथिकपाथः स्रोतसा सिद्धमूर्ति-
र्दिनकरकुलभूषारत्नयत्नोदयोत्था ।
प्रणतजनसुरद्रुः पावनी पावनानां
जयति जगति गङ्गा भाग्यपूगो जनानाम् ॥२॥

गंगे ! मातरनुस्मरामि सततं त्वन्मूर्तिमत्यद्भुतां
दैवीं दैवतदुर्लभां यमुनया वाचाऽन्न संपूर्णया ।
भक्तेनाथ भगीरथेन भगवत्पादैश्च पादार्चकै
र्या नित्यं समुपाश्रिता विजयते गङ्गोत्तरी सद्मनि ॥३॥

तुहिनशिखरिशृङ्गे दिव्यसौभाग्यसम्प-
न्महिमनि विहरन्तीं पुष्पवासे विशाले ।
सुकृतिसमधिगम्ये सम्यगालीजनाली-
विलसितमलसाक्षीं नौमि गङ्गामभीक्ष्णम् ॥४॥

गङ्गोत्तर्यामिह गिरिगुहावेश्मनि त्वत्पदान्ते
पाद्मे पीठे स्थिरमृजु कदा संस्थितः सन् सुखेन ।
न्यस्तस्वान्त स्त्वयि शिवतनो ! देवि ! कस्तूरिकाणां
संवर्षाश्मायित मिदमहं विस्मरिष्यामि देहम् ॥५॥

(श्री तपोवनस्वामिकृत – गङ्गास्तोत्रम्)

* ॐ तत्सत् *

श्रीगङ्गोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यम्

प्रथमः खण्डः।

ब्रह्मलोके महागोष्ठ्यां ब्रह्मणा चान्यदैवतैः।
मुनिभिः सनकाद्यैश्च, मण्डितायां महात्मभिः ॥१॥

ब्रह्मलोक में श्रीब्रह्माजी, इन्द्रादिदेवता एवं महात्मा सनक, सनन्दन आदि मुनियोंसे सुशोभित हुई महासभामें ॥१॥

गायन्गायंश्च माहात्म्यं, गंगोत्तर्याः सुशोभनम्।
आजगामैकदाऽकस्मा, द्देवर्षिर्नारदोमुनिः ॥२॥

एक बार गंगोत्तरीके अत्यन्त सुन्दर माहात्म्यको बारम्बार गाते हुए देवर्षि नारदमुनि अकस्मात् आगये ॥२॥

विपञ्चीसुस्वरै स्तस्या माहात्म्यं कीर्तयन्मुहुः।
भक्तितः स मुनिश्रेष्ठः प्रणनाम चतुर्मुखम् ॥३॥

वे, वीणाके मधुर स्वरों द्वारा गंगोत्तरीके महात्म्यको अनुराग और रागके साथ बारम्बार कीर्तन कर रहे थे। ऐसे मुनिश्रेष्ठ श्री नारदजीने बड़ी ही भक्ति पूर्वक श्री ब्रह्माजीको प्रणाम किया ॥३॥

ब्रह्मोवाच।

किं किं कथय भद्रं त, आस्यतामत्र वै मुने।
दृष्टोऽसि बहुकालेन, कुत्र कुत्राटितं त्वया ॥४॥

ब्रह्माजी बोले:—हे मुनिश्रेष्ठ ! आओ ! यहां बैठो। तुम्हारी कुशल है ? कहो क्या क्या वृत्तान्त है ? मैंने बहुत समयके पश्चात् आज तुम्हें देखा है। इतने दिनों तक कहां कहां भ्रमण करते रहे ॥४॥

नारद उवाच।

लोकेषु तत्र तत्राहं, पर्यटन्नन्ततोऽभ्यगाम् ।
गंगोत्तरीं हिमगिरे, हैंममस्तकसंस्थिताम् ॥५॥

नारदजीने कहा:—मैं लोकोंमें इधर उधर पर्यटन करता हुआ, अन्तमें हिमालयके हिमशिखर पर स्थित श्रीगंगोत्तरीमें गया ॥५॥

दिव्यवृक्ष वनाच्छन्नां, दिव्यपुष्पविशोभिताम् ।
दिव्यनादैर्विहंगानां, सर्वतोमुखरीकृताम् ॥६॥

वहांकी शोभाका क्या वर्णन करूं, अलौकिक वृक्ष और वनोंसे आच्छादित है, दिव्य पुष्पोंसे शोभायमान है और अनेकों भांतिके पक्षियोंके मनोरम कलरवसे चारों ओर गुंजित है ॥६॥

अहो ! विष्णुपदी साक्षा, दवतीर्णा द्यु लोकतः ।
आदितो यत्र मर्त्यानां, मक्षिगोचरतां गता ॥७॥

श्रीविष्णु भगवान्के चरणसे निकली हुई, अहो ! साक्षात् श्रीगंगाजी स्वर्गलोकसे अवतीर्ण होकर, सबसे पहले जिस स्थानपर मनुष्यों के दृष्टिगोचर हुई थी ॥७॥

भगीरथशिला पुण्या, विख्याता यत्र राजते ।
यस्यां स्थित्वा नृपश्रेष्ठ, स्तपश्चक्रे सुदारुणम् ॥८॥

जहां अति पवित्र और सर्वत्र प्रसिद्ध भगीरथशिला सुशोभित हैं, जिसपर बैठकर नृपश्रेष्ठ श्रीभगीरथजीने अतिदुष्कर तप किया था ॥८॥

गंगायां तत्र वै स्नात्वा, संपूज्य च सरिद्वराम् ।
भक्त्या नामसहस्रेण, तुष्टाव च पुनः पुनः ॥९॥

मैंने जाकर वहीं पर स्नान किया और सुरसरीकी भक्ति सहित पूजा की और गंगाकी सहस्र नामोंसे बारम्बार स्तुति की ॥९॥

गंगोत्तरात्समुत्थाय, गायन्नेवमुहुर्मुहुः ।
माहात्म्यं तीर्थवर्यस्य, सम्प्राप भवदन्तिकम् ॥१०॥

और गंगोत्तरीसे चलकर सर्व तीर्थोंमें श्रेष्ठ श्रीगंगोत्तरीके माहात्म्यको पुनः पुनः गाता हुआ ही आपके समीप आया हूं ॥१०॥

ब्रह्मोवाच ।

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि, धन्यो धन्यः पुनः पुनः ।
यत्त्वया सेवितं तीर्थं, पुण्य गंगोत्तरं मुने ! ॥११॥

ब्रह्माजी बोले:—हे मुने ! यदि तुमने पुण्य तीर्थ गंगोत्तरीका सेवन किया है तो तुम कृतकृत्य हो गये, तुम धन्य हो । तुम्हें वारवार धन्यवाद है ॥११॥

भगीरथतपः स्थानं, त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
इदं भूलोकवैकुण्ठ, मितिजानीहि नारद ॥१२॥

हे नारद ! यह पवित्र पुण्यतीर्थ भगीरथका तपस्थान तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, इसे तुम भूलोकका बैकुण्ठ ही समझो ॥१२॥

भुक्तिमुक्तिप्रदं क्षेत्र, मन्यन्नास्तीदृशं भुवि ।
कलिदोषविमुक्तं यत्, साक्षाद्गंगाविहारभूः ॥१३॥

भोग एवं मोक्ष दोनों देनेवाला इसलोकमें इसके समान और कोई क्षेत्र नहीं है, क्योंकि कलिके कराल दोषोंसे यह मुक्त है और साक्षात् गंगाजीकी क्रीड़ाभूमि है ॥१३॥

अनेकशतसंख्याकै, रतत्र तत्रोग्रलिंगकैः ।
अन्यैश्च विविधैर्देवविग्रहैः संप्रपूरितम् ॥१४॥

इधर उधर सैकड़ों शिवलिंगोंसे और अन्य नाना प्रकारकी देव मूर्तियों सहित सुन्दरतासे परिपूर्ण है ॥१४॥

अहो ! भाग्योदय स्तेषां, येजनाः पर्युपासते ।
महापुण्य मिदं तीर्थं, शुद्ध सत्त्वगुणोदयम् ॥१५॥

वास्तवमें उनपुरुषोंका भाग्य उदय हुआ है, अहो ! वे धन्य हैं जो शुद्ध सत्त्वगुणके उत्कर्ष वाले इस महान् पवित्र पुण्यतीर्थका सेवन करते हैं ॥१५॥

न पापं न दुराचारः, कौटिल्यं कूटकर्म च ।
न धर्मध्वजिता यत्र, नवा दुःखं महाद्भुतम् ॥१६॥

अहो ! महान आश्चर्य है कि जिस क्षेत्रमें पाप नहीं, दुराचार नहीं, कुटिलता नहीं, छल एवं वंचनादि नहीं और किसी प्रकारका दुःख भी नहीं है ॥१६॥

तापसानां तपः स्थानं, मुनीनां मननालयः ।
भक्तानां च विरक्ताना, मावासो हृदयप्रियः ॥१७॥

जो तपस्वियोंका तपस्थान है, भक्तों और विरक्तोंका अत्यन्त ही मनोरंजक निवासस्थान है ॥१७॥

फलमूलसमृद्धं यद्गुहागह्वरशोभितम् ।
प्रशांतैकान्तगम्भीर, महो ! ब्रह्मसमाधिभूः ॥१८॥

अहो ! जो कन्दमूल फलोंसे समृद्ध, एवं रमणीक गुफा कन्दराओंसे शोभित, अत्यन्त ही शान्त, एकान्त गंभीर और ब्रह्म-समाधिके योग्य उत्तम स्थान है ॥१८॥

नारद उवाच ।

गंगोत्तरस्य वैशिष्ट्यं, किं कस्मादाह्वयस्तथा ।
संवृत्तस्तस्य कल्याण, स्तन्मे ब्रूह्यात्मजन्मनः ॥१९॥

नारदजी बोले:—हे पिताजी ! गंगोत्तरीका माहात्म्य क्या है ? उसका ऐसा शुभ नाम किस कारणसे हुआ ? वह सब अपने प्रिय पुत्र मुझसे कहिये ॥१९॥

पुण्यक्षेत्रे च तत्क्षेत्रे, शृणु लोकपितामह ।
यानि स्थानानि मुख्यानि, सेवितव्यानि वै नरैः ॥२०॥

हे सर्वलोकोंके पितामह ! सुनिये ! पुण्यपयोधि उस क्षेत्रमें जो मुख्यस्थान मनुष्योंके सेवन करने योग्य है ॥२०॥

तानिचाशेषतो ब्रह्मन्, श्रोतुमिच्छामि ते मुखात् ।
त्वदन्यः सर्वमेतद्वै, को वा वेत्ति विशेषतः ॥२१॥

हे ब्रह्मन ! उन सब पुण्यस्थानोंका सविस्तार वर्णन आपके मुखसे सुननेकी इच्छा करता हूं । आपके अतिरिक्त यह सब विशेष रूपसे कौन जानता है ॥२१॥

ब्रह्मोवाच ।

साधु साधु त्वयापृष्टं, शृणु मे वचनं मुने ! ।
संक्षेपतः प्रवक्ष्यामि, यत्पृष्टं गोप्यमुत्तमम् ॥२२॥

ब्रह्माजी बोले:—हे मुने ! तुमने बहुत अच्छा पूछा । मेरा वचन श्रवण करो ! तुमने जो अतिश्रेष्ठ और अतिगोप्य गंगोत्तरीके माहात्म्य आदि पूछे है, उन्हें मैं संक्षेपसे वर्णन करूंगा ॥२२॥

गंगोत्तरस्य माहात्म्य, मद्भुतं रोमहर्षणम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन, दैवतानां च दुर्लभम् ॥२३॥

गंगोत्तरीका माहात्म्य बड़ाही अद्भुत और रोमांचकारी है । इसे अत्यन्त प्रयत्नसे गुप्त रखना चाहिए, क्योंकि यह देवताओंको भी दुर्लभ है ॥२३॥

राजानो वाडवा वैश्याः स्त्रियश्चबहवोऽन्त्यजाः ।
कैवल्यं कामितार्थांश्च, लेभिरेऽस्य निषेवणात् ॥२४॥

अनेकों राजा, ब्राह्मण, वैश्य, स्त्रियां और शूद्र आदि इस पुण्यतीर्थके सेवनसे अपनी २ इच्छित कामना और मोक्षको भी प्राप्त कर चुके हैं ॥२४॥

गंगोपसेवनं नान्यद्भुक्ति मुक्ति प्रसिद्धये ।
कालेयकाले तद्दोष दूषितालसचेतसाम् ॥२५॥

और विशेष कर कलिकालमें कलि दोषोंसे दूषित जिनके मन मलिन और आलसी हैं, उनको भोग और मोक्षको सिद्धिके लिये पतित-पावनी गंगाके सेवनके बिना कोई अन्य उपाय नहीं है ॥२५॥

गंगाया दर्शनं पुण्यं गंगाया मवगाहनम् ।
गंगातीरनिवासश्च, गंगानामजपार्चनम् ॥२६॥

श्रीगंगाजीका दर्शन महापुण्य है, गंगाजीमें स्नान, गंगातीर निवास, गंगाजीका नामजप और उसका पूजन सब ही पुण्यप्रद है ॥२६॥

गंगांभोवायुसंस्पर्शनाऽपि पापः प्रशुद्ध्यति ।
पापानां पाप मोक्षाय, कामसिद्ध्यै च कामिनाम् ॥२७॥

गंगाजलके वायुके स्पर्शसे भी पापी पुरुष पवित्र हो जाता है। पापीयोंकी पाप निवृत्तिके लिये, कामनावालोंकी कामना सिद्धिकेलिये ॥२७॥

आर्त्तानामार्त्तिनाशाय, मोक्ष सिद्ध्यै तदर्थिनाम् ।
सर्वेषां सर्वसिद्ध्यै च गंगैव शरणं कलौ ॥२८॥

दुःखियोंके दुःख नाशके लिये, मुमुक्षुओंकी मोक्ष सिद्धिके लिये और सबको सब प्रकारकी सिद्धिके लिये, कलियुगमें केवल गंगाजी ही शरण है ॥ २८ ॥

ब्रह्मैव परमं साक्षा, द्द्रवरूपेण धावति ।
पुमर्थकरणार्थंकौ, गंगेति शुभसंज्ञया ॥२९॥

साक्षात्परब्रह्म ही पृथ्वी में 'गंगा' इस शुभनामसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार प्रकारके पुरुषार्थ देनेके लिए जलरूपसे बह रहे हैं ॥२९॥

ऊर्द्ध्व मूर्द्ध्वं विष्णुपद्या, माहात्म्य मतिरिच्यते ।
तस्मादुपर्येव याव, च्छक्यं सेवेत जाह्नवीम् ॥३०॥

ऊपर २ गंगाजीका माहात्म्य अधिक है। इसलिए जहां तक हो सके ऊपर ही जाकर जाह्नवीका सेवन करे ॥३०॥

उत्तराखंडमूर्द्धा यत्, साक्षाद्गंगोदयालयः ।
वैशिष्ट्यं क्षेत्रवर्यस्य, तस्य वक्तव्य मस्तिकिम् ॥३१॥

जो उत्तराखण्डका मस्तक है और साक्षात् गंगाजीका उद्भव स्थान है, उस महान् क्षेत्रके माहात्म्यका क्या वर्णन किया जाय ? उसकी प्रशंसा जितनी भी की जाय सब थोड़ी ही है ॥३१॥

गांगताहि ततो गंगे, त्यभिधानंबभूवह ।
सा गंगा भूमिगोच्चण्डाखंण्डाश्चर्यगतिक्रमा ॥३२॥

पहले स्वर्गलोकमें आनेपर "गंगा" इस शुभ नामसे विख्यात हुई और वही गंगा मर्त्यलोकमें आकर प्रचण्ड अखण्ड और अलौकिक गति क्रमसे आश्चर्य उत्पन्न कर रही है ॥३२॥

उत्तराभिमुखी यत्र, क्षेत्रे वहति वैष्णवी ।
ततस्तत् क्षेत्र माख्यातं, गंगोत्तर मिति क्षितौ ॥३३॥

ऐसी विष्णुसुता श्रीगंगाजी जिस पुण्य क्षेत्रमें उत्तराभिमुखी बहती है, इसलिए भूलोकमें वह क्षेत्र "गंगोत्तर" नामसे कहा जाता है ॥३३॥

लक्षीकृत्य हि यत् क्षेत्रं, स्वर्गंगा स्वर्गलोकतः ।
उत्तरत्यन्तरिक्षादीन्, तस्माद्वा तत्तथोच्यते ॥३४॥

अथवा स्वर्गलोकसे स्वर्गकी गंगा जिस क्षेत्रको लक्ष्य करके अन्तरिक्षादि लोकोंको अतिक्रमण करती हुई आई है, इस कारणसे उस श्रेष्ठ क्षेत्रको "गंगोत्तर" कहते हैं ॥३४॥

उत्तरांशस्तु गंगाया, यद्वा यत्र विराजते ।
तस्मान्नारद तत्क्षेत्रं, गंगोत्तर मिति स्मृतम् ॥३५॥

अथवा जिस क्षेत्रमें गंगाजीका उत्तरभाग विराजमान है, हे नारद ! इसलिये वह क्षेत्र "गंगोत्तर" कहा जाता है ॥३५॥

यत्र गंगा महाभागा, नान्यः परम दैवतम् ।
तद्वा गंगोत्तरं नाम, पुण्यधाम प्रकीर्त्यते ॥३६॥

अथवा जहां महामहिमशालिनी श्रीगंगाजी प्रधानदेवता है, अन्य नहीं है, इस कारणसे वह पुण्य धाम "गंगोत्तर' नामसे प्रकीर्तित है ॥३६॥

विशेषेण तु यत् क्षेत्रे, गंगोत्तरण साधनम् ।
भवांबुधे स्ततो वैतत्, क्षेत्रं गंगोत्तरं स्मृतम् ॥३७॥

अथवा जिस क्षेत्रमें श्रीगंगाजी विशेष रूपसे संसार समुद्रको पार करनेका साधन है इसीसे यह क्षेत्र "गंगोत्तर" कहा गया है ॥३७॥

स्थानान्यपि च मुख्यानि, सेवितव्यानि मानवैः ।
शृणु पुत्र महाक्षेत्रे, तत्र त्वं श्रद्धयान्वितः ॥३८॥

हे पुत्र ! उस महाक्षेत्रमें मनुष्योंके सेवन करने योग्य मुख्य मुख्य स्थानोंको भी तुम श्रद्धायुक्त होकर सुनो ॥३८॥

भगीरथशिला या तु, त्वया दृष्टा च सेविता ।
गंगोत्तर्यां तु तत्स्थानं, सर्वस्मादुत्तमोत्तमम् ॥३९॥

जिस भगीरथशिलाका तुम दर्शन कर आये हो, और सेवन किया है, गंगोत्तरीमें सर्व श्रेष्ठ वही स्थान है ॥३९॥

पंचवर्षसहस्राणि, पंचवर्षशतानि च ।
अत्र तेपे तपस्तीव्रं, जीर्णपर्णाशनो नृपः ॥४०॥

इसी स्थानमें राजा भगीरथजीने पांच हज़ार पांच सौ वर्ष तक सूखे पत्तोंको खाकर अत्यन्त कठिन तप किया था ॥४०॥

तत्रैवं सुचिरं कालं, तप्यमानस्य भूपतेः ।
श्रीमद्वर्ष्मणि वल्मीकं, सजातं महदद्भुतम् ॥४१॥

चिरकाल तक इसी स्थानपर इस प्रकार तप करते हुए—अहो ! महान आश्चर्य की बात है कि—राजाके कान्ति युक्त शरीर के ऊपर दीमक उत्पन्न हो गया था ॥४१॥

प्रचण्ड तपसा तस्य, संतुष्टोऽहं तदग्रतः ।
प्रत्यक्षीभूय भूपाय, वरं चात्रैव दत्तवान् ॥४२॥

उस राजाकी इतनी उग्र तपस्यासे सन्तुष्ट होकर राजाके सामने प्रत्यक्ष आकर, मैंने उसी स्थानमें उसे अभीष्ट वर दिया था ॥४२॥

कलिंदकन्यया सार्द्धं, तत्र श्रीजाह्नवी सदा ।
निवसत्यत्र वै गंगा, पूज्यते च यथाविधि ॥४३॥

वहीं श्रीजमुनाजीके साथ श्रीगंगाजी सर्वदा निवास करती है और साथ ही यहां पर यथाविधि पूजित होती है ॥४३॥

गंगा च यमुना चैव, कन्यायुग्मं सुभासुरम् ।
नानालंकार संयुक्तं, मुक्तामणि विभूषितम् ॥४४॥

दो कन्याएँ, गंगा और यमुना अत्यन्त मनोहर, नाना भूषणों से एवं मुक्तामणियोंसे विभूषित ॥४४॥

सितासित शुभांगश्च, चलत् कुंडल शोभितम् ।
अंशुमत्पुत्रपुत्रस्य, बभूवाध्यक्षगोचरम् ॥४५॥

एक गौर एक कृष्ण, सुन्दर शरीरवाली, कानोंमें हिलते हुए कुण्डलोंसे शोभित, राजा अंशुमानके पौत्र भक्त भगीरथके सामने प्रत्यक्ष प्रकट हुई थी ॥४५॥

यथा पूर्वं तथाऽद्यापि, सर्वदाऽपि महात्मनाम् ।
तत्पादपंकजानन्यभक्तानां भक्तचेटकम् ॥ ४६ ॥

जैसे पहले तैसे अब भी सभी समय उनके चरणकमलोंके अनन्य भक्तजनों को भक्तों की दासी ये दोनों कन्याएं ॥४६॥

ददाति दर्शनं तत्र, पुण्यधाम्नि न संशयः ।
दृश्यते विचरद्रूपं, देवदारु वनान्तरे ॥४७॥

उस पुण्यधाममें दर्शन देती है इसमें संशय नहीं है। वहां देवदारूके पवित्र वनोंमें विचरते हुए उनके मनोहर रूप देखनेमें आते हैं ॥४७॥

कर्णालंबित तार्टका, क्वणत् कांची गुणान्विता ।
सुस्मिता पद्मपत्राक्षी स्वर्णसिंहासने स्थिता ॥४८॥

कानोंमें धारण किये हुए कर्णफूल वाली, और झनकार करती हुई करधनीसे युक्त, मधुर हास्यवाली, कमलके समान सुन्दर नेत्रवाली, सुवर्णके सिंहासन पर बैठी हुई ॥ ४८ ॥

अनेक स्त्री परिवृता, श्वेतच्छत्रोपशोभिता ।
इन्द्रादिभिर्लोकपालै, र्वीज्यमाना सुचामरैः ॥४९॥

अनेक देवांगनाओंसे घिरी हुई, श्वेतछत्रसे शोभित, इन्द्रादि लोक पालोंसे सुन्दर चँवर डुलाई जाती हुई ॥ ४९ ॥

त्रैलोक्यजननी साक्षात्, त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभा।
अर्कपुत्र्या समं गंगा, नित्य मत्र विराजते ॥५०॥

साक्षात् तीनों लोकोंकी माता, तीनों लोकोंको दुर्लभ, श्री गंगाजी, सूर्यपुत्री यमुनाजीके साथ सदाही यहां विराजती है ॥ ५० ॥

अहो! गंगोत्तरी तीर्थस्यास्य माहात्म्य मद्भुतम्।
जाह्नवीसद्मनः साक्षाद्भगीरथतपोभुवः ॥५१।

अहो! साक्षात् जाह्नवी स्थान और भगीरथकी तपो भूमि इस गंगोत्तरी तीर्थका माहात्म्य बड़ा ही अद्भुत है ॥ ५१ ॥

अत्र स्नात्वा तु गंगाया, मर्चयित्वा च जह्नुजाम्।
सर्वपापात् प्रमुक्तो वै, मर्त्योऽमर्त्यपदं व्रजेत् ॥५२॥

इस स्थानपर गंगाजीमें स्नान करके, एवं प्रेमपूर्वक जाह्नवी का पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और अमर पदको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

पितृभ्यः पिंडदानादिक्रियायां मुनि सत्तम!।
तत्स्थानं शोभनं भूमौ, सर्वेभ्यश्च विशिष्यते ॥५३॥

हे मुनि श्रेष्ठ! और पितरोंको पिंडदान, तर्पण आदि क्रिया करनेके लिये वह पुण्य तीर्थ पृथ्वीमें सर्व तीर्थोंसे श्रेष्ठतर है ॥ ५३ ॥

न कालनियम स्तत्र, पिंडदानादिकर्मसु।
दिवावा यदि वा रात्रौ, क्रियां कुर्वीत मानवः ॥५४॥

पितरोंके लिये पिंडदान, तर्पण आदि क्रिया करनेमें उस स्थानमें कालका नियम नहीं है, दिन अथवा रात्रि हो मनुष्य श्राद्ध आदि क्रियाओंको कर सकता है ॥ ५४ ॥

नाम गोत्रं समुच्चार्य, यो दद्याच्छ्राद्ध मत्र वै ।
स्वर्गं गच्छंतिपितर, स्तस्य पातकिनोऽपिवा ॥५५॥

इस स्थानमें नाम और गोत्रको उच्चारण करके जो श्राद्धादि करे उसके अत्यन्त पापी पितृभी स्वर्गको जाते हैं । ५५ ॥

हविर्दानञ्च देवेभ्यो, यदत्र कुरुते नरः ।
विशिष्ट फलदं विद्धि, तच्च देवमुने शृणु ॥५६॥

हे देवर्षि ! सुनो ! इस स्थानमें देवताओंको मनुष्य जो हविका दान करता है, उसे वह विशिष्ट फल देता है ऐसा तुमजानो ॥ ५६ ॥

सुवर्णं कलधौतञ्च, गामन्नं पृथिवीं तथा ।
विप्रेभ्यो यत् प्रयच्छन्ति, तदत्राशु फलप्रदम् ॥५७॥

जो कुछ सुवर्ण, चांदी, गौ, अन्न तथा भूमि आदि ब्राह्मणोंको दान करते हैं इस स्थानपर वह दान शीघ्रही फल देनेवाला होता है ॥५७॥

वाराणसीगयागंगाद्वारादिभ्योऽपि कोटिशः ।
फल तत्राधिकं विंदे, दानादीनां न संशयः ॥५८॥

काशी, गया, हरिद्वार आदि तीर्थों से भी वहां दानादियोंका कोटि गुण अधिक फल होता है । इसमें संशय नहीं ॥ ५८ ॥

कुत्र गंगोत्तरी तीर्थं, कुत्र काशीगयादयः ।
प्रचंडद्यु मणेरग्रे, खद्योतः किं प्रकाशते ॥५९॥

कहां तो गंगोत्तरी तीर्थ और कहां काशी, गया आदि तीर्थ ! मध्याह्नकाल के सूर्य के सम्मुख खद्योत क्या प्रकाश कर सकता है ॥५९॥

काश्यादीनि महातीर्था, न्यात्मशुद्ध्यै भजंतिहि ।
मूर्तिमन्ति महाक्षेत्रं, दिवारात्रमिदं मुने ॥६०॥

हे मुने ! काशी, गया आदि महातीर्थ दिव्यमूर्ति धारण करके अपनी शुद्धि के लिये इस पवित्रक्षेत्रका निरन्तर दिन रात सेवन करते हैं ॥ ६० ॥

गौरीकुंडं महातीर्थं, तच्छिलायास्तु पृष्ठतः ।
देवगम्यं महारम्यं, दर्शनात् पापनाशनम् ॥६१॥

उस भगीरथशिला के पृष्ठभागमें देवताओंसे सेवनीय, अत्यंत रमणीक, केवल दर्शनसे ही पापोंका नाश करने वाला "गौरीकुण्ड" नामक महातीर्थ विद्यमान है ॥ ६१ ॥

केदारगंगा केदारशैलशृंगा द्विनिःसृता ।
यत्र श्रीजह्नु सन्तत्या, संगता पुण्यदायिनी ॥६२॥

जहां पर केदारनाथपर्वतके शिखरप्रान्तसे निकली हुई, पुण्यदायिनी श्री केदार गंगा, श्रीजाह्नवी गंगासे मिलती है ॥ ६२ ॥

सुदर्शनं तत्र गंगापाथः प्रपतनं मुने ।
गभीर निनदं नित्यं, महाश्चर्य विधायकम् ॥६३॥

हे मुने वहां गंभीर शब्दवाला अत्यन्त आश्चर्यकारी गंगाजी के जलका महान् निरन्तर प्रपात (ऊँचे पाषाण से नीचे गिरना) अति दर्शनीयहै ॥ ६३ ॥

गौरी साक्षान्महेशानी, संवृताहि सखीजनैः ।
तत्र संक्रीडते तस्माद्गौरीकुंडं निगद्यते ॥६४॥

वहां सब ओर सखियोंसे घिरी हुई, साक्षात् महेश्वरी श्री गौरीजी आनन्दकी क्रीड़ा करती हैं; इसलिये वह "गौरीकुण्ड" कहा जाता है ॥ ६४ ॥

गौरीकान्तश्च विश्वेशः, शंकरः प्रमथाधिपः ॥
स्वस्य भूतगणै र्युक्त स्तत्र नित्यं विराजते ॥६५॥

सर्व ब्रह्मांड के ईश्वर, गौरी के पति, प्रमथगणों के नायक श्री शंकरजी भी अपने भूतगणों के साथ वहाँ सदैव निवास करते हैं ॥६५॥

सेतुतर्पण मेतस्मिन्, पुण्यतीर्थे विधीयते ।
तद्विधिं संप्रवक्ष्यामि, शृणु मे श्रद्धयान्वितः ॥६६॥

इस महान् पुण्यतीर्थ में सेतुतर्पण नामकी पुण्यक्रिया की जाती है। उसकी विधि सम्यक् प्रकार से कहता हूं। श्रद्धापूर्वक मेरे बचन सुनो ॥ ६६ ॥

नारिकेलत आनीय, वालुकाः सेतुबंधनात् ।
अभ्यर्च्य विधिवत्तत्र, रुद्रीपाठादिना मुने ! ॥६७॥

हे मुने ! रामेश्वर से सेतुबंध (धनुष्कोटी) स्थान की रेती नारियल में लाकर वहां विधि पूर्वक रुद्रीपाठ आदि सहित पूजन करनेके अनंतर ॥ ६७ ॥

कुंडेतत्र समर्प्यते, श्रद्धया तापसोत्तमैः ।
सेतुतर्पण मेतद्वै, महापुण्य फलप्रदम् ॥६८॥

उसी गौरी कुंडमें श्रेष्ठ तपस्वी जन श्रद्धाके साथ उसे समर्पण करते हैं। यह सेतु तर्पण नामक क्रिया महापुण्य फल देने वाली है॥६८॥

यथोक्तविधिना तात ! यः कुर्यात् सेतुतर्पणम् ।
निष्कामश्चेत् पुनर्जन्म, तस्य न स्यान्न संशयः ॥६६॥

हे पुत्र ! जो कोई पूर्वोक्तविधि से सेतुतर्पण करेगा, यदि निष्काम हो तो उसका पुनर्जन्म अवश्य नहीं होगा। इसमें संशय नहीं ॥ ६६ ॥

सकामश्चेत् सद्यएव, वाञ्छितार्थ मवाप्नुयात् ।
धन्यो धन्यः स मर्त्योयः सेतुं तर्पयतीदृशम् ॥७०॥

और यदि सकाम हो तो शीघ्र ही अपने अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति होगी। जो इस प्रकार उस सेतुका तर्पण करते हैं, वे मनुष्य अत्यंत धन्य हैं ॥ ७० ॥

अन्यच्च कथयिष्यामि, शृणु मे श्रद्धया मुने ! ।
गंगोत्तर्याश्चयो गंगातोय मानीय नारद ॥७१॥

हे मुने ! एक बात और भी कहता हूं। श्रद्धापूर्वक मेरे वचन सुनो ! हे नारद ! गंगोत्तरी से गंगा जल लाकर, ॥ ७१ ॥

बहिरन्तः शुचिर्नित्यं, श्रद्धावान् संशितव्रतः ।
पादचारी सदाचारी, पृथ्वीशायी तथाल्पभुक् ॥७२॥

सर्वदा बाहर भीतर से अत्यंत शुद्ध, श्रद्धावान्, तीक्ष्ण व्रतवाला पैदल चलनेवाला, उत्तम आचरणवाला, पृथ्वी पर सोनेवाला और अल्प भोजन करने वाला होकर ॥ ७२ ॥

रामेश्वरे महाक्षेत्रे, रामचंद्रेण यत्पुरा ।
स्थापितं शिवलिंगंवै, पूजितं सर्व दैवतैः ॥७३॥

प्राचीन कालमें महाक्षेत्र रामेश्वरमें श्री रामचन्द्रजी के करकमल स्थापित और सर्व देवताओंसे पूजित जो शिवलिंग है, ॥ ७३ ॥

अभिषेकेण तल्लिंग, मभ्यर्चयति मानवः ।
विधिवत् स फलंतस्य, शिवसायुज्य मृच्छति ॥७४॥

उस शिवलिंगका जो मनुष्य, अभिषेक पूर्वक यथाविधि पूजन करता है, वह उसके फल स्वरूप शिवजीकी सायुज्यमुक्ति पाता है ॥ ७४ ॥

यज्ञभूः पाण्डु पुत्राणा, सुमाकुण्डस्य पृष्ठतः ।
पावनी पुरुपुण्याढ्या, दर्शना दुःख नाशिनी ॥७५॥

गौरीकुंडके- पीछे अतिपवित्र, महापुण्यदायिनी, दर्शनमात्रसे अनेक दुखोंके नाश करनेवाली पांडवोंकी यज्ञभूमि है। (इसको देशभाषामें "पट्टाङ्गना" कहते हैं) ॥ ७५ ॥

गोत्रहत्यासमुत्पन्न पापशान्त्यै तु पांडवाः ।
द्वैपायनाज्ञयाऽभिज्ञाः, प्रापुस्त्रिपथगोत्तरम् ॥७६॥

कुटुम्बकी हत्यासे उत्पन्न हुए पापकी निवृत्तिके लिए श्रीवेद व्यासजीकी आज्ञासे बुद्धिमान पांडवगण गंगोत्तरीमें आये थे ॥७६॥

तत्र गत्वा दैवयज्ञ श्चात्र निर्वर्तितो महान् ।
यथाविधान मास्तिक्य बुद्ध्या द्विजसहायकैः ॥७७॥

और वहां जाकर, उन्होंने ब्रह्मर्षियोंकी सहायतासे श्रद्धापूर्वक विधिवत् इसी जगह महान देवयज्ञ संपादन किया था ॥७७॥

अहो ! रम्यमिदं स्थानं, विशाल मनुपद्रवम् ।
मृत्कुक्षौ तन्मखोच्छिष्टं, भस्म चाद्यापि दृश्यते ॥७८॥

अहो ! यह स्थान महान सुन्दर, विशाल और निरुपद्रव हैं।

वहांकी मिट्टीके भीतर अब भी उस यज्ञका अवशिष्ट भस्म देखनेमें आता है ॥७८॥

एकादशानां रुद्राणा, मावासोच्चशिलोच्चयात् ।
निपतन्तीं पश्य गंगां, रुद्रपूर्वां समीपतः ॥७९॥

उसके समीप एकादश रुद्रोंके निवासस्थान अत्यन्त ऊंचे पर्वतसे (जिसे देश भाषामें "रुद्रगैरु" कहते हैं) निकली हुई, "रुद्र गंगा" नामक मनोहर धारा को देखो ! ॥७९॥

विषयासंगि चित्तं वै कथ मुन्नति माप्नुयात् ।
अक्लिष्ट वर्त्मना मन्दं रोहतीवाधिरोहणीम् ॥८०॥

जैसे आयास विना धीरे धीरे क्रमशः सीढी चढ जाता है, वैसे ही विषयों में आसक्त हुआ चित्त मन्द मन्द किस प्रकार उन्नति को प्राप्त होगा ॥ ८० ॥

इति सञ्चिन्त्य तीर्थानां दैवतानाञ्च कल्पनम् ।
तत्र तत्र कृतं लोकगुरुभि स्तत्त्वदर्शिभिः ॥८१॥

तत्त्व को जानने वाले, लोकों के आचार्यों द्वारा इस प्रकार विचार करके उसी उसी स्थान में तीर्थ एवं देवताओं की कल्पना की गयी है॥८

आसेवितानि विधिवत् सर्वाण्येतानि तैः स्वयम् ।
जोषयद्भिरहो लोकाँ ल्लोक संग्रहकारिभिः ॥८२॥

लोक संग्रह करने वाले, लोगों की उनमें प्रवृत्ति कराने वाले ऋषि लोग अपने स्वयं ही उन सबका सेवन भी विधि पूर्वक किये ॥८

अग्निकर्मसु नष्टेषु नष्टे च तपसि क्षितौ ।
कथं वा दुर्बलो मर्त्यः प्रेयः श्रेयश्च साधयेत् ॥८३॥

अग्निहोत्रादि कर्म नष्ट हो गये। पृथ्वी में तप भी लुप्त हो गया। बलहीन मनुष्य किस प्रकार भोग और मोक्ष को प्राप्त करेगा ॥ ८३ ॥

निष्कामसेवया देव्याः संजाता पुण्यसंहतिः ।
निबर्हयति वै पापं बहुजन्मसु संचितम् ॥८४॥

श्री गंगाजी की निष्काम सेवा से महान पुण्य समूह उत्पन्न होते हैं, और अनेक जन्मों में इकट्ठे किये पापों को एकदम नष्ट कर देते हैं ॥ ८४ ॥

रागादि चित्तदोषाश्च क्षीयन्ते तदनन्तरम् ।
दोषक्षये च भगवद् भक्ति र्ज्ञानं च जायते ॥८५॥

राग, द्वेष आदि चित्त के सब दोष भी उसके पश्चात् क्षीण हो जाते हैं। एवं सब दोष भी नष्ट होने पर निर्मल हुए मन में ईश्वर भक्ति तथा ज्ञान भी उदित होते हैं ॥ ८५ ॥

अनायासेन मर्त्याना मनर्हाणाञ्च नारद ।
ईश भक्तिश्च मुक्तिश्च क्षिप्रमेवं प्रसिध्यति ॥८६॥

इस प्रकार हे नारद! अयोग्य मनुष्योंको भी क्लेश विनाही ईश्वर भक्ति और मुक्ति भी जल्दी सिद्ध हो जाती हैं ॥८६॥

सर्व तीर्थ तपो योग स्वाध्यायार्चनकीर्तनैः ।
निः श्रेयसफलं मुख्य मन्यदापातिकं फलम् ॥७८॥

जो जो तीर्थ, तप, योग, स्वाध्याय, पूजन और कीर्तन इत्यादि

हैं, उन सबका भी मोक्ष प्राप्ति ही परम और चरम फल है, अन्य सब फल भी तात्कालिक हैं ॥८७॥

गुड जिह्विकया नूनं बालवन्मन्दबुद्धयः ।
तत्तत्फलैः प्रवर्त्यन्ते तत्तदुत्तमकर्मसु ॥८८॥

जैसे कड़वी दवाई खिलाने के लिये बालकों को पहले गुड़ दिया करते हैं, वैसे ही अविवेकी जनों को उसी उसी सांसारिक फल के द्वारा एकैक श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्ति कराते हैं ॥ ८८ ॥

सर्वमापातमधुरमहो सांसारिकं फलम् ।
अनित्यं दुःखसंभिन्नं सुबुद्धिभि रकांक्षितम् ॥८९॥

सांसारिक जितने भोग हैं, सारे अविचार काल में ही प्रिय लगते हैं; सब अस्थिर हैं, दुःख से मिश्रित हैं; विवेकी जन जिनकी कांक्षा न ही करते हैं ॥ ८९ ॥

तीर्थाटनादि सकलं कृच्छ्रसाध्यं सुकर्मयत् ।
कः कुर्यात्क्षणिकार्थानां कृते मूढजनेतरः ॥९०॥

तीर्थाटन इत्यादि कष्टसाध्य जो नाना सत्कर्म हैं, मूढ़ जन से अन्य कौन क्षणिक विषयोंके लाभ के लिये उसका अनुष्ठान करेगा ॥९०॥

ईश्वर प्रीतिरेवात्र पुण्यकर्मफलं नृणाम् ।
नान्यद्भवतु भव्यानां भवसंकट मोचनी ॥९१॥

इस संसार में सुबुद्धि पुरुषों के लिये पुण्य कर्मों का फल संसार संकट से विमोचन करने वाली ईश्वर प्रीति ही होना चाहिये; अन्य नहीं ॥ ९१ ॥

ईश्वरः सर्वं जगतो भगवान् भक्त वत्सलः ।
सेव्योऽहं ननु संसारी जीव स्तदुपसेवकः ॥६२॥

सर्व जगत के ईश्वर, भक्तवत्सल भगवान सेवा करने योग्य हैं; मैं संसारी जीव उनका तुच्छ सेवक हूं ॥ ६२ ॥

इति द्वैतधिया सम्यगुपक्रम्येश सेवनम् ।
सर्वं मीश इति प्रज्ञां निर्द्वैतां साधयेद् बुधः ॥६३॥

इस प्रकार द्वैत बुद्धि से सश्रद्ध, सभक्तिक, ईश्वर भजन का आरम्भ करके, अनन्तर "सब ईश्वरमय" इस प्रकार की अद्वैत बुद्धि का बुद्धिमान जन अभ्यास करें ॥ ६३ ॥

सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानं साक्षान्मोक्षैक साधनम् ।
हन्त हन्तेह जन्तूनां सहसा कस्य सिध्यति ॥६४॥

मुक्ति के अनन्य साधन, "सब ब्रह्म है" इस प्रकार का प्रत्यक्ष अनुभव, अहो इस संसार में प्राणियों में एकदम किस को सिद्ध होता है ? ॥ ६४ ॥

सर्वं ब्रह्मेत्यखण्डा धी र्यावन्नोदेति कुत्रचित् ।
इदं ब्रह्मेति बुद्धिर्या सखण्डा सा विधीयते ॥६५॥

"सब ब्रह्म है" इस प्रकारकी अपरिच्छिन्न ब्रह्मबुद्धि जब तक उदित नहीं होती, तब तक किसी आलंबन में "यह ब्रह्म है" इस प्रकार की परिच्छिन्न जों ब्रह्म बुद्धि है, उसका विधान किया जाता है ॥ ६५ ॥

ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किञ्च सचराचरम् ।
बहुजन्म कृताभ्यासा दित्येषा जायते मतिः ॥६६॥

चर और अचर के सहित जो कुछ यह संपूर्ण जगत ईश्वर से व्याप्त है, ईश्वरमय है, इस प्रकार की यह बुद्धि-ज्ञान–बहु जन्मों में किए अभ्यास से ही उत्पन्न होती है ॥ ९६ ॥

धुनीं वा ग्रावमूर्तिं वा स्थूलां नोपासितुं क्षमः ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं तत्त्व मैश्वरं वा स्मरेत् कथम् ॥९७॥

स्थूलतर किसी नदी की, अथवा पाषाण मूर्तिकी उपासना करने में जो समर्थ नहीं, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर ईश्वर तत्त्वका वह किस प्रकार स्मरण करेगा ॥९७॥

प्रकृत्या सुन्दरं स्थानं वस्तु चावर्जकं प्रभोः ।
दर्शनार्हण चिन्तासु श्रेष्ठ मालं बनं मतम् ॥९८॥

प्रकृति से ही सुन्दर स्थान, ऐसे अन्य मनोहर पदार्थ भी परमात्मा के दर्शन, पूजन, तथा चिन्तन में श्रेष्ठ और ऋषिमुनियों के सम्मत आलंबन है ॥ ९८ ॥

नाना विषय विक्षिप्तं दुष्टचित्तं मनागपि ।
ईश्वराभिमुखं कुर्या दिति तीर्थादि कल्पना ॥९९॥

नाना प्रकार के बिषयों करके विक्षिप्त हुए, रागादि दोषों से दूषित चित्त को थोड़ा भी ईश्वर के अभिमुख लगावे, इस प्रयोजन के लिए तीर्थ आदियों की कल्पना हुई है ॥ ९९ ॥

साकार मीशरूपंयत् परोक्ष मिति दुर्ग्रहम् ।
अतिमन्दधियां किञ्चित् प्रतीकत्वेन कल्प्यते ॥१००॥

ईश्वर का जो साकार रूप है, परोक्ष होने से उनका भी चिन्तन आदि करना कठिन होता है। इसलिए अति मन्द बुद्धियों के लिए

प्रतिक (आलंबन) रूप से किसी वस्तु की कल्पना की जाती है ॥१००॥

येन केन प्रकारेण विष्वग्गामि दृढं चलम् ।
चित्त मेकत्र संरुन्ध्या दनुक्षणविकल्पकम् ॥१०१॥

जिस किसी प्रकार से इधर उधर दौड़ने वाले, दृढ़, चञ्चल और क्षण २ नाना कल्पना करने वाले चित्त को एक स्थान में सम्यक् निरोध करें ॥ १०१ ॥

असद्वृत्तिपरं चित्तं कुर्यात् सद्वृत्तियत्नतः ।
ततो निर्वृत्तिकं कुर्यादिति तत्त्वगतिक्रमः ॥१०२॥

दुष्कार्यों में लम्पट चित्त को यत्न करके भी सद्वृति वाला बनावें; पश्चात् सद् वृत्ति का भी निरोध करके वृत्तिशून्य बनावे; इस क्रम से परमार्थ तत्त्व की प्राप्ति होती है ॥ १०२ ॥

ईश्वरो वेत्ति विश्वात्मा सर्वां सर्वस्य भावनाम् ।
यादृशी भावना तादृक् फलञ्चापि प्रयच्छति ॥१०३॥

सर्वात्मा परमेश्वर सबकी सब प्रकार की भावना को जानते हैं; जिस प्रकार की भावना है, उस प्रकार का फल भी दे देते हैं ॥१०३॥

तीर्थ सेवनतः केचिद्रामकृष्णाद्युपासया ।
जपेन तपसा चान्ये प्रार्थना कीर्तनादिभिः ॥१०४॥

कोई तीर्थ सेवा से, अन्य कोई राम, कृष्ण आदियों की उपासना से, और अन्य जप से, तप से तथा प्रार्थना, कीर्तन इत्यादियों से ॥१०४॥

स्वाध्यायाभ्यासतः केचिच्छास्त्र चिन्ताक्रमेण च ।
प्राणायामेन चाप्यन्ये ध्यानयोगेन चापरे ॥१०५॥

और कोई स्वाध्याय के अभ्यास से, कोई अन्य शास्त्रों के चिन्तन के द्वारा, और अन्य प्राणायाम से, एवं इतर कोई ध्यान योग से भी ॥ १०५ ॥

कर्मानुष्ठानतः केचिद् दान सेवादिभिः परे ।
इत्थ मीश्वर माराध्य निष्कामाः शोधयन्ति हृत् ॥१०६॥

कोई कोई यज्ञ,याग आदि कर्मों के अनुष्ठान से, और अन्य द्रव्य दान, लोक सेवा इत्यादियों से, इस प्रकार निष्काम साधक जन परमेश्वर की आराधना करके अपने चित्त का शोधन करते हैं ॥ १०६ ॥

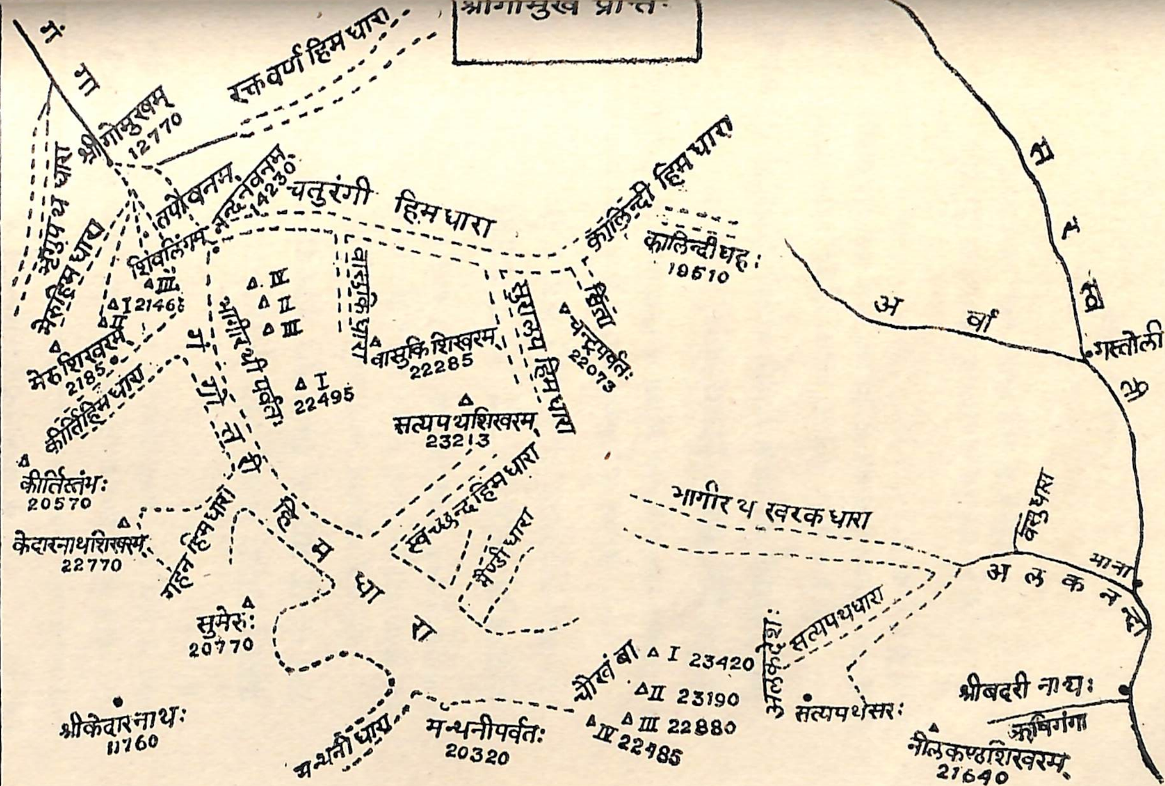
विकल्पशत विक्षिप्त मशुद्धं चित्त मञ्जसा ।
निर्विकल्पपदोपान्तं गन्तु मर्हेत् कथं प्रभोः ॥१०७॥

सैकड़ों विकल्पों से विक्षिप्त, तथा अशुद्ध चित्त एक दम ईश्वर के निर्विकल्प स्वरूप के पास पहुंचने में किस प्रकार समर्थ होगा ॥१०७॥

निर्मलं शुद्ध मेकाग्रं विचारनिपुणं मनः ।
वेत्ति सम्यक् परं तत्त्व मवाङ् मनस गोचरम् ॥१०८॥

राग, द्वेष आदि मल से रहित, शुद्ध, एकाग्र और विचार समर्थ मन ही वाक् और मन के अगोचर परम तत्त्व को साक्षात् अनुभव करता है ॥ १०८ ॥

इति श्री गंगोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्ये श्री गंगोत्तरगौरीकुंडादि तीर्थवर्णनं नाम प्रथमः खंडः समाप्तः ॥



Specially drawn by Sri Swami Tapovanji. Scale 1 inch = 5 miles.

अथ द्वितीयः खंडः ।

नारद उवाच ।

गंगोत्तरादितीर्थानां माहात्म्य मतुलादूभुतम् ।
अतिमात्रनिगूढ़ं यत्, त्वत्कृपातः श्रुतं मया ॥१॥

नारदजी बोलेः— गंगोत्तरी आदि तीर्थोंका, अनुपम अद्भुत और अत्यंत गूढ़ जो माहात्म्य है, उसे आपकी कृपासे मैंने सुन लिया ॥ १ ॥

स्थानाना मपि चान्येषां, प्रकृतक्षेत्रवर्तिनाम् ।
सुतवात्सल्यतः श्रीमन्! वैशिष्ट्यं श्रावय प्रभो ! ॥२॥

अब, हे श्रीमन्! हे प्रभो ! गंगोत्तरीक्षेत्रमें स्थित अन्य स्थानोंका भी माहात्म्य आप पुत्रस्नेहसे मुझे सुनाइये ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

अन्यान्यपि सुपुण्यानि, स्थानानि शृणु नारद ! ।
दर्शनेन विनश्यंति, महापाप शतान्यपि ॥३॥

ब्रह्माजी बोले :—हे नारद ! तुम अतिपुण्यदायक अन्य स्थानोंको भी सुनो ! जिनके दर्शनसे सैकड़ों महापापोंका भी नाश हो जाता है ॥३॥

प्रियोऽसि मे तनूजोऽसी त्युच्यते गोप्यमुत्तमम् ।
त्रैलोक्यदुर्लभं तेषां, वैशिष्ट्यं शिष्टहर्षणम् ॥४॥

तुम तो मेरे प्रिय हो; पुत्र हो; इसलिये त्रिलोकको भी दुर्लभ, गूढ़, अति उत्तम और शिष्ट पुरुषोंको आनन्द देनेवाला उन स्थानोंका माहात्म्य कहता हूं ॥ ४ ॥

लक्ष्मीवनं महालक्ष्म्याः क्रीडनोपवनं मुने ! ।
पुरतो भ्राजते तत्र, फलवृक्षविराजितम् ॥५॥

हे मुने ! इसके आगे महालक्ष्मीका क्रीड़ास्थान, अनेक प्रकार के फलोंवाले वृक्षोंसे शोभित, लक्ष्मीवन विराजमान है (इसे 'गंगा बगीचा' भी कहते हैं) ॥ ५ ॥

देवीगंगा संगमश्च, तत ऊर्ध्वं समीपतः ।
दिवौकसां स्थान मेत, न्नास्ति मर्त्यसमागमः ॥६॥

उसके आगे पास ही श्री भागीरथीगंगा के साथ देवीगंगाका संगमस्थान है। यह देवताओंका स्थान है। मनुष्योंका समागम वहां दुर्लभ है। (इसे देश भाषामें "देवघाट" कहते हैं) ॥ ६ ॥

ततोऽपि दिशि पूर्वस्यां, भूर्जवासोऽति सुन्दरः ।
ऊर्जस्वलै भूर्जवृक्षैरापूर्णं विस्तृतं वनम् ॥७॥

उसके भी पूर्वदिशा में अत्यन्त सुन्दर "भुर्जवास" है। यह भोजपत्र के उज्ज्वल और ऊर्जित वृक्षों से भरा हुआ रमणीक और विशाल वन है। (यह स्थान "भोजवासा" नाम से प्रसिद्ध है ॥७॥

देवर्षि यक्ष गंधर्व सिद्ध चारण सेवितम् ।
अहो ! धन्यः स मर्त्योयः स्थान मेतत् प्रपश्यति ॥८॥

अहो ! जो मनुष्य, देव, ऋषि, गंधर्व, सिद्ध और चारणों से सेवित इस दिव्य स्थान का दर्शन करते हैं, वे अतिधन्य हैं ॥८॥

पुष्पवासो विशाला भू स्तदूर्ध्वं मुनि पुंगव ! ।
दिव्यानां बहुपुष्पाणा मुद्यानं विद्धि नारद ! ॥९॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! भोजवासा के आगे "पुष्पवास" नामक विशाल मैदान है। हे नारद ! उसे नाना प्रकार के अलौकिक और सुन्दर पुष्पों का बड़ा बगीचा जानो। (देशभाषा में इसे "फूलवासा" कहते हैं) ॥९॥

तत्र श्री गोमुखंस्थानं, साक्षाद्‌गंगावतार भूः ।
ऋषिभिर्बहुधा गीतं, पुण्यात् पुण्यतरं भुवि ॥१०॥

वहां साक्षात् गंगाजी की अवतार भूमि, ऋषिमुनियों द्वारा नाना प्रकार से कीर्तित, पृथ्वीभर में पवित्र से भी अत्यंत पवित्र श्री 'गोमुख' नामक स्थान है ॥ १० ॥

शैलशृंगै र्महोच्छ्रायै, र्वेष्टितं हिमशोभितैः ।
द्युलोक निकटस्थंवै, द्युलोकिभिरधिष्ठितम् ॥११॥

जो अत्यन्त ऊंचे बर्फसे ढंके हुए, विशाल पर्वत शिखरोंसे आवृत, देवलोकके समीपवर्ती और देवताओं से अधिष्ठित है ॥११॥

तत्र प्रालेयसंघात भूषिते भूविभूषणे ।
गोमुखे गोमुखाकार महातुहिन गह्वरात् ॥१२॥

बर्फके समूहसे भूषित और भूमिके विभूषण उस गोमुख स्थानमें गौके मुखके सदृश बर्फकी महान गुफासे ॥ १२ ॥

निर्गच्छति महावेगा, गंगा सुरतरंगिणी ।
पावनी पावनार्थाय, पृथ्वीलोक निवासिनाम् ॥१३॥

पुण्यवती, सुरनदी श्री गगाजी भूलोकके निवासियोंको पावन करते के लिये महान वेगवती होकर निकल रही है।। १३ ।।

देवखातबिले तत्र, दुर्गा द्दुर्गतरेऽपि यः ।
गत्वा तु जाह्ववीतोये, बिधिवत् स्नान माचरेत् ।।१४।।

दुर्गम से दुर्गम होनेपर भी, जो उस देवनिर्मित गुफामें ह जाकर गङ्गाजलमें विधिपूर्वक स्नान करते हैं ॥ १४ ॥

अवश्यं तस्यवै पुत्र ! पुनर्जन्म न विद्यते ।
नात्र शंका विधातव्या, प्रतिजाने प्रियोऽसिमे ।।१५।।

हे पुत्र ! अवश्यही उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसमें तनि भी संदेह करना योग्य नहीं। मैं प्रतिज्ञा के साथ कहता हूं। क्योंकि तु मुझे अति प्रिय हो ! ॥ १५ ॥

गोमुख्यां तत्र विख्याते, सूर्यकुण्डे निमज्जति ।
नीलनीरदवर्णाढये, यस्स सूर्यवदुज्ज्वलेत् ।।१६।।

इसी गोमुख स्थानमें जो पुरुष नीलमेघके समान रंगवा विख्यात सूर्यकुण्डमें स्नान करते हैं; वह सूर्य के सदृश कान्ति वा होते हैं ॥ १६ ॥

तत ऊर्ध्वं तु भूमीद्ध्रा, मर्त्य संचार दूरगाः ।
आच्छन्नाः संततस्थायि घनोत्तुंगमहाहिमैः ।।१७।।

उसके आगे पर्वत समूह सदा स्थिर रहनेवाले अति सघन अ ऊंचे महान बर्फोंसे ढके रहते हैं, इसलिये वे मनुष्यकी गति रहित हैं ॥१७॥

गोमुखीतो विशालापू, र्नातिदूरे विराजते ।
तत्रायं गमने मार्गः सिद्धानां चामृतांधसाम् ॥१८॥

गोमुखीस्थानके पास ही बदरीपुरी विराजमान है। वहां जानेके लिये यह सिद्ध और देवताओंका मार्ग है, यानी मनुष्यकी गति रहित उन पर्वतशिखरोंद्वारा सिद्ध और देवता लोग जाते हैं॥ १८॥

नारद उवाच ।

माहात्म्यं जाह्नवीजन्मभुवः श्रीगोमुखस्य यत् ।
लोकेश कृपया किंचिद्विस्तरेण वद प्रभो ! ॥१९॥

नारदजी बोले :—श्रीगंगाजी की जन्मभूमि, श्रीगोमुखका जो माहात्म्य है, उसे हे लोकों के स्वामी ! हे प्रभो ! कृपा करके कुछ विस्तार पूर्वक कहिये !॥ १९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणुमे सम्प्रवक्ष्यामि, यत्पृष्टं प्रियदर्शन ! ।
वैशिष्टच्यं गोमुखीयं वै, गोप्य मेतत् सनातनम् ॥२०॥

हे प्रियदर्शन ! तुमने जो गोमुखका माहात्म्य पूछा है, उसे मैं सम्यक् प्रकारसे कहता हूं। मेरे वचन सुनो ! यह सनातन रहस्य गुप्त रखने योग्य है॥ २०॥

क्रीडारंगंश्रियः साक्षाद्, गोमुखी लेख सस्तुता ।
गोवक्त्राभ हिमग्रावच्छिद्रतोऽन्वर्थनामिका ॥२१॥

देवताओं द्वारा कीर्तित गोमुखीस्थान, साक्षात् लक्ष्मीकी क्रीड़ाभूमि और गौके मुखके समान हिमपाषाणकी गुफा होनेसे अनुरूप नामवाला है॥ २१॥

श्रीशैलहिमकूटैर्या, भासिता सर्वतो दिशि ।
स्वयं च सुभगोत्तुंग हिमानीकृतभूषणा ॥२२॥

जो सब ओरसे श्रीशैल नामक पर्वतके हिमशिखरोंसे प्रकाशि है; और स्वयंसुन्दर एवं ऊंचे हिम समूहोंका आभूषण किये हुए है ॥२२

तथाह्नि कलधौताभैः सायञ्च कनकप्रभैः ।
प्रहर्षयति या चित्तं, पर्वताग्रै रलौकिकैः ॥२३॥

और जो दिनमें चांदीके प्रकाशवाले और सायंकाल में सुवर के प्रकाश वाले, दिव्य पर्वत शिखरों से चित्त को अत्यन्त आह्लादि करता है ॥ २३ ॥

किमयं तपनीयाद्रिः, किंवा रजत पर्वतः ।
इति संदेहतो यत्र, बाढ़ं मुह्यंति मानवाः ॥२४॥

क्या यह सोनेका पर्वत है, या चांदी का पर्वत ? इस प्रक के महान सन्देहसे जहां मनुष्य अत्यन्त मोहित हो जाते हैं ॥ २४ ॥

अहो ! दिव्या दिव्यकान्तिच्छटाच्छन्न दिगंतरा ।
भ्राजते साऽचलाधीश मूर्द्धोत्तंसमहामणिः ॥२५॥

अहो ! जो दिव्य और हिमालयके शिरोभूषणका अमूल्य रत्न और अपने अलौकिक कान्ति पुंजसे दिशाओंके मध्य को व्याप्त कि हुए अत्यन्त दीप्यमान है ॥ २५ ॥

देवसेव्यश्च तत्स्थानं दैवतानां च दुर्लभम् ।
महापुण्य महोपुण्यपूरुषैरवलोकितम् ॥२६॥

अहो ! वह स्थान देवताओं द्वारा सेवनीय, देवताओं को भी दुर्लभ और महापुण्य जनक है; जिसे कि पुण्यात्मा लोगोंने अवलोकन किया है ॥ २६ ॥

अगहनगहनं वै, लताविटपिवर्जितम् ।
प्रशांतमतिगंभीरं, विशालं ग्राव संकुलम् ॥२७॥

वह वनोंसे दुर्गम नहीं है अर्थात् वन रहित है और लता वृक्षों से रहित है। प्रशांत और अत्यन्त गम्भीर है। विशाल है और पत्थरों से अति संकीर्ण है ॥ २७ ॥

निकटस्थ बृहच्चर्मिवनशोभाविशोभितम् ।
पक्षिभिः सुस्वरैर्नाना रूपवर्णैश्च मण्डितम् ॥२८॥

समीपमें ही स्थित महान भोजपत्रके वनकी शोभासे शोभायमान, तथा मधुर स्वरवाले और नाना प्रकार एवं नाना रंगवाले मनोहर पक्षियोंसे अलंकृत है ॥ २८ ॥

कृष्णरक्तैः श्वेत पीतैः पुष्पै र्दिव्य मनोहरैः ।
इन्द्राणी केश भूषाभिः समाच्छन्नं समन्ततः ॥२९॥

इन्द्राणी के केशोंके भूषण, तथा दिव्य, मनको हरने वाले श्याम, लाल, श्वेत और पीले पुष्पोंसे सर्वत्र आच्छादित है ॥ २९ ॥

कस्तूर्याद्यै र्विचित्रैश्च, मृगभेदैरनद्भुतैः ।
सर्वदाऽद्ध्युषितं दिव्यैः स्वच्छन्द मकुतोभयम् ॥३०॥

कस्तूरीमृग, बरड आदि नाना प्रकार के अलौकिक और अति अद्भुत जंगली पशु, स्वतन्त्र और भय रहित होकर वहां सभी समय निवास करते हैं ॥ ३० ॥

अहो तत्रत्य सुषमां, कोवा वर्णयितुं प्रभुः ।
इन्द्रोप्यक्षिसहस्रेण, यां विलोक्य न तृप्यति ॥३१॥

अहो ! वहांकी प्राकृतिक शोभाका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ? जिसको अपने सहस्र नेत्रों से देखकर इंद्र भी तृप्त नहीं होता ॥३१॥

नैतत् केवल मक्षाणां, सदैवाह्लादकं मुने ! ।
सर्वपुण्यमहातीर्थ मूर्द्धभूषेति विद्धितत् ॥ ३२ ॥

हे मुने ! यह स्थान केवल सदा इन्द्रियों को सुख प्रदान करने वाला ही नहीं, किन्तु उसे सर्व महान् पुण्य तीर्थों का शिरो भूषण जानो ! ॥३२॥

सकृदेवात्र गमना, द्दर्शनात् सर्व किल्विषम् ।
समूलं विलयं याति, वाञ्छितार्थ मवाप्नुयात् ॥३३॥

एकवार भी इस स्थान पर जाकर दर्शन करनेसे सब पाप समूल विनष्ट हो जाते हैं और शीघ्रही अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है ॥३३॥

यदि तत्रत्यगंगांभोबिन्दु मेकमपि स्पृशेत् ।
यत्रकुत्राऽपि निवसन् , पुमान् याति सुरालयम् ॥३४॥

यदि वहां के गंगाजलका एक बिन्दु भी स्पर्श करे तो जहां तहां कहीं भी निवास करने वाला मनुष्य भी देवलोकको प्राप्त होता है ॥३४॥

हरिणापि हरेणापि, मया मघवतापि च ।
असकृत् सेवितं तीर्थं, श्रद्धेयं श्रद्धया मुने ! ॥३५॥

हे मुने ! स्वयं विष्णुने, शिवजीने, इन्द्रने और मैंने भी श्रद्धा करने योग्य इस तीर्थका श्रद्धापूर्वक अनेक बार सेवन किया है ॥३५॥

अहो ! मुनिवरास्तत्र, गत्वा ब्रह्मविचिन्तने ।
मज्जंति दिव्यसुषमा समाकृष्टधियो बलात् ॥३६॥

अहो ! उत्तम मननशील पुरुष वहां जाकर, प्रकृतिकी उस दिव्य अनुपम शोभासे हठात् अत्यन्त आकृष्टचित्त होकर ब्रह्मचिन्तन में निमग्न हो जाते हैं ॥३६॥

हेतुज्ञानं फलज्ञानात्, परीक्षकमतं खलु ।
तथा च प्राकृताभिख्यादर्शनाद्ब्रह्मसंस्मृतिः ॥३७॥

कार्यके ज्ञानसे उसके कारणकी स्मृति होती है; यह दार्शनिकों का मत है। इसी प्रकार प्राकृतिक कान्ति के दर्शन से उसके कारण ब्रह्मकी स्मृति होती है ॥३७॥

तन्निर्मातुः स्मृति यद्वन्महार्हगृहदर्शने ।
अकृतं वस्तुविस्तारं, दृष्ट्वा वै दिव्यमद्भुतम् ॥३८॥

महान सुन्दर महलके दर्शनसे जैसे उसके बनाने वाले की स्मृति होती है, जो मनुष्य द्वारा नहीं बनाये गये ऐसे अलौकिक एवं अद्भुत पदार्थों की महिमा देख कर ॥३८॥

तत्कर्तु रीश्वरस्यापि, तद्वदुत्पद्यते स्मृतिः ।
ततः किं मद्भुतं तत्र, मज्जंतीशीति सज्जनाः ॥३९॥

वैसेही उसके कर्त्ता ईश्वरकी स्मृति उत्पन्न होती है। इस लिये वहां यदि मननशील मनुष्य ब्रह्ममें निमग्न हो जाते हैं, तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥३९॥

सौन्दर्यं ब्रह्मणो रूपं प्रकृत्यामनुवर्तते ।
प्रकृतेर्नास्ति सौन्दर्यं स्वस्वरूपात्मको गुणः ॥४०॥

सौन्दर्य ब्रह्मका ही स्वरूप है। ब्रह्मका सौन्दर्य प्रकृति में अनुगत होता है। सौन्दर्य प्रकृति के अपना स्वरूप भूत गुण नहीं है ॥४०॥

सत्यानाञ्च महासत्यं चेतनानाञ्च चेतनम् ।
ब्रह्म विद्धि जगद्बीजं सुन्दराणाञ्च सुन्दरम् ॥४१॥

सब सत्यों का महासत्य, चेतनों का भी चेतन, एवं सुन्दरों का भी सुन्दर, इस जगत का बीज भूत ब्रह्म ही है, यह जानो ॥४१॥

आनन्दयति तत्तादृग् ब्रह्मैव परमाततम् ।
प्रकृतिद्वारतः सर्वान् यथास्वंहि जनुष्मतः ।४२॥

सबके अधिष्ठान, व्यापक, तादृश ब्रह्म ही प्रकृति के द्वारा सब प्राणियों को यथायोग्य आनन्दका प्रदान करते हैं ॥४२॥

एवं ब्रह्मण एवैषा न स्वस्याः प्रकृतेर्द्युतिः ।
इति साक्षात्प्रपश्यन्ति ब्रह्मतत्त्व विशारदाः ॥४३॥

इस प्रकार परब्रह्म की ही यह शोभा है। प्रकृति की अपनी शोभा नहीं है। ब्रह्मतत्त्वको जानने वाले इसका साक्षात् अनुभव करते हैं ॥४३॥

तादृशा स्तादृशे स्थाने ब्रह्मसौन्दर्य दीपिते ।
ब्रह्म सम्पत्तिमायान्ति भावाविष्टधियोबलात् ॥४४॥

ब्रह्म सौन्दर्य से शोभित ऐसे स्थानों में ब्रह्मवित् लोग भावाविष्ट होकर जबरन ब्रह्म समाधिको प्राप्त हो जाते हैं ॥४४॥

अहो ! पुण्य महो ! पुण्यं, गोमुखी दर्शनं मुने ! ।
पुण्यात्मा धन्यधन्यो यः सएव लभते हि तत् ॥४५॥

हे मुने ! गोमुखका दर्शन अति अद्भुत और अत्यन्त पुण्य-दायक है, जो पवित्रात्मा अत्यन्त ही धन्य है, वे ही उसको प्राप्त करते हैं ॥४५॥

गोमुखीदर्शनं तत्र, स्नानं च बहुशोभनम् ।
फलं ददाति भक्तेभ्यो, दृष्टं चादृष्ट मेव च ॥४६॥

गोमुखका दर्शन और वहांका स्नान भक्तोंको ऐहिक एवं पारलौकिक सर्व प्रकारका अत्यन्त श्रेष्ठ फल देता है ॥४६॥

बहुना किमिहोक्तेन, गुह्याद्गुह्यतरं शृणु ! ।
गोमुखीसदृशं तीर्थं, भुवि नान्यत्र विद्यते ॥४७॥

इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? गोप्यसे भी अत्यन्त गोप्य सुनो ! गोमुखके सदृश तीर्थ भूलोकमें अन्यत्र नहीं है ॥४७॥

यानि प्रोक्तानि वै स्थाना, न्यत्र तुभ्यं मुनीश्वर ! ।
श्रद्धया तानि सर्वाणि, सेवितव्यानि मानवैः ॥४८॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! जितने स्थान तुम्हारे प्रति वर्णन किये हैं, वे सभी मनुष्यों द्वारा श्रद्धापूर्वक सेवन करने योग्य हैं ॥४८॥

धन्यातिधन्य मन्यच्च, स्थानं यद्यदधस्तनम् ।
श्रूयतां सावधानेन मनसा श्रद्धयाऽपि च ॥४९॥

इनके सिवाय जो और भी धन्यसे भी अत्यन्त धन्य नीचेके स्थान हैं, उनको सावधान मनसे श्रद्धापूर्वक सुनो ॥४९॥

गौरीकुण्डाच्च नीचैः श्री भैरव स्थान मुत्तमम् ।
भैरवोभैरवाकार, स्तत्र सेव्यो महाबलः ॥५०॥

गौरीकुण्डसे नीचे अति उत्तम श्रीभैरवजी का स्थान है। वहां भयानक आकृतिवाले महाशक्तिशाली श्री भैरवजी सेवन करने योग्य हैं ॥५०॥

ततोधस्ताच्च गम्भीरं, स्थान मत्यंतशोभनम् ।
संगता यत्र कृष्णांगी जह्नु गंगा च गंगया ॥५१॥

और उससे भी नीचे अत्यन्त सुन्दर, गम्भीर स्थान है, जहां श्यामसुन्दरी जह्नु गंगा श्रीगंगाजी के साथ मिली है ॥५१॥

जह्नु गंगातटेनोद्ध्वं, गच्छन्तो मुनिसत्तम ! ।
लभंते बहुतीर्थानि, दिव्यान्यंहोहराणि च ॥५२॥

हे मुनीश्वर ! जह्नु गंगाके किनारे ऊपर की ओर जानेवाले मनुष्य, पापको हरनेवाले अनेकों दिव्य तीर्थ प्राप्त करते हैं ॥५२॥

यियासवोऽनया सृत्या, कलधौतशिलोच्चयम् ।
यान्ति साक्षाच्छिवावासं, दर्शनात् संसृतिच्छिदम् ॥५३॥

साक्षात् शिवजीके निवासस्थान और दर्शनसे ही सम्पूर्ण संसार-बंधको नष्ट करनेवाले रजतगिरि कैलाश को जाने वाले लोग इस मार्गसे जाते हैं। (इस कैलाशमार्गको "नीलङ् पास" कहते हैं) ॥५३॥

तस्याभ्यर्णतएव श्रीजह्नो राश्रमभूमुने ! ।
यत्र स्थित्वा तु राजर्षि, श्चचार परम तपः ॥५४॥

हे मुने ! उस संगमस्थानके समीप ही श्रीजह्नु महर्षिका आश्रम-स्थान है। जहां निवास करके राजर्षि श्री जह्नुजीने अत्यन्त कठिन तपस्या की थी। (इस स्थानको "जांगला" कहते हैं) ॥५४॥

तस्याभ्यर्णे भुवि श्रीमत् कुंकुमाख्या सरिद्वरा ।
शृणु भद्रतटे यस्या, वीरभद्रो विराजते ॥५५॥

सुनो, उसके नीचे थोड़ी दूर पर कुंकुम नाम की मनोहर जल धारा है, जिसके रमणीक तटपर श्री वीरभद्र विराजमान हैं ! (इस धाराको "गुंगुम नाला" कहते हैं) ॥५५॥

तत्पार्श्वे च महत् स्थानं, यत्रदेवी विराजते ।
चंडेश्वरी महाकाली. चंडमुण्ड विमर्दिनी ॥५६॥

और उसकी बगलमें एक महान् स्थान है, जहां चण्ड, मुण्ड, दैत्योंका विनाश करने वाली महाकाली चण्डेश्वरी देवी विराजती है ॥५६॥

तत्रैव च महारम्या, धारा पुण्यप्रदा मुने ! ।
देव गंगा समाख्याता, दैवतैरुपसेविता ॥५७॥

हे मुने ! उसी जगह सुरम्य पुण्यदायिनी और देवताओं द्वारा सेवित देवगंगा नामकी विख्यात जलधारा है। (इसे भी देशभाषामें "देवघाट" कहते हैं ॥५७॥

ततोऽपि पृष्ठतः स्थानं, मार्कण्डेयस्य नारद ! ।
विशालपुलिनोपान्ते, दर्शनीयं समंततः ॥५८॥

हे नारद ! इस धाराके पीछे गंगाजीकी विशाल रेतीके समीप सब ओरसे अत्यन्त सुन्दर, दर्शनीय मार्कण्डेय मुनिका मनोहर स्थान है। (यह "मार्कण्डेय" नामसे प्रसिद्ध है) ॥५८॥

मतंगोऽपि मुनिश्रेष्ठ, स्तत्रैव बहुवत्सरान् ।
तपस्तेपेऽनिलाहारः, सिद्धिं चेयाय निस्तुलाम् ॥५९॥

इसके पास ही मुनि श्रेष्ठ मतंग ऋषिने केवल वायुभक्षण

करके अनेकों वर्ष तक तपस्या की थी और अतुल सिद्धिको भी लाभ किया था। (इस स्थानको "मखवा" कहते हैं) ॥५९॥

गंगोत्तरं गन्तुकामा, धर्मजाग्र्याश्च तद्भुवि ।
बहुतमीर्वसन्तोंऽम्बां, पूजयामासु रास्तिकाः ॥६०॥

गंगोत्तरी जानेवाले युधिष्ठिर आदि पांडवोंने उस स्थानपर अनेक रात्रि निवास करते हुए आस्तिकता और प्रेमपूर्वक श्री गंगाजीका अर्चन किया था ॥६०॥

वायुपुत्र समानीता, वायुवेगा महानदी ।
पुनात्येतन्मुनिपदं वहन्ती मद्धयतो दिशि ॥६१॥

वायुपुत्र भीमसेनकी लाई हुई वायुके तुल्य वेगवाली जलकी महान धारा मध्य भागमें बहती हुई इस मुनि स्थानको पवित्र करती है। (इसको "भीमधारा कहते हैं") ॥६१॥

पांडवाश्वखुराणाञ्च, चिह्नमश्मतलेऽङ्कितम् ।
पुण्यपुंमात्र सुलभं, प्रपश्यात्र महाद्भुतम् ॥६२॥

यहां पुण्यात्मा पुरुषोंको ही प्राप्त होने वाले, अत्यन्त आश्चर्य दायक, पाषाण पर अंकित हुए पांडवोंके घोड़ेके खुर चिन्होंका दर्शन करो ॥६२॥

सर्वसंपत्करं ह्येतत्, सद्म सत्याधिरोहणी ।
अंबायाः प्रियवेश्मैतत्, प्रियंदिविषदा मपि ॥६३॥

यह स्थान सब संपत्तिको देनेवाला और ब्रह्मलोक की सीढ़ी है। यह श्रीगङ्गामाता जी का प्रिय निवास स्थानहै और सदैव देवताओंको भी अति प्रिय है ॥६३॥

मठाना मपि सर्वेषां, पृथिवीपृष्ठवर्तिनाम् ।
गंगा निकेतनं ह्ये तन्मुख्यो मठ इतीष्यते ॥६४॥

पृथ्वीपर वर्तमान सब मठों में गंगाजीका यह निवास स्थान मुख्य मठ माना जाता है। (इसलिये यह "मुखी मठ" नामसे भी प्रसिद्ध है) ॥६४॥

भगीरथ तपः स्थाने, यादृक् स्यात्कर्मणः फलम् ।
तादृगेव फलं विद्धि, मार्कण्डेय तपः स्थले ॥६५॥

भगीरथके तपस्थान गंगोत्तरीमें जितना दानादि पुण्यकर्मोंका फल होता है, उतना ही फल इस मार्कण्डेयके तपस्थानमें भी जानो ॥६५॥

स्नान तर्पण दानादि सत्क्रियाः शास्त्रचोदिताः ।
सुव्रतेऽत्रापि कर्तृणां, फलं महदभीप्सितम् ॥६६॥

यहां भी शास्त्र विहित स्नान, तर्पण दान आदि सब शुभ क्रियायें, उन्हें करनेवालेको महान् अभीष्ट फलप्रदान करती है ॥६६॥

शिला तत्र महापुण्या, विशाला मुनिसेविता ।
दर्शनेन विशीर्यंते, प्राक्कृताः कर्म कोटयः ॥६७॥

वहां महान पुण्य प्रद, मार्कण्डेय मुनिसे सेवन की हुई, विशाल शिला है, जिसके दर्शनसे पूर्व किये हुए असंख्यों पापकर्म नष्ट हो जाते हैं ॥३७॥

अन्नवासोवितरण, मस्मिन् स्थाने विशिष्यते ।
तन्महाश्मनि विप्राद्या, स्तर्पणीया यथाविधि ॥६८॥

इस स्थानपर अन्न, वस्त्र आदिका दान अतिश्रेष्ठ है। तथा उस पवित्र शिलापर बैठाकर ब्राह्मणादिकों को विधि पूर्वक भोजन आदि से तृप्त करना उचित है ॥६८॥

मार्कण्डेयपुरे गंगामातुराराध्यसंनिधौ ।
रात्रिवासी वसेद्गत्वा, वसत्यां कृत्तिवाससः ॥६९॥

मार्कण्डेयपुरीमें श्री मातेश्वरी गंगाजीकी पूज्य सन्निधिमें एक रात्रि भी रहनेवाला, मरनेके पश्चात् अवश्य ही शिवलोकमें वास करता है ॥ ६९ ॥

महर्षयो मस्करीन्द्रा, स्तथा मातृपदाब्जयोः ।
अनुरक्ता विरक्ताश्च, वसन्त्यत्र विशेषतः ॥७०॥

महर्षि और श्रेष्ठ संन्यासी जन, श्रीगंगाजीके चरणकमलोंके अनुरागी तथा अत्यन्त तीक्ष्ण वैराग्यवान् भी यहां विशेष कर निवास करते हैं ॥ ७० ॥

दक्षयागे सतीदाहः, संपन्न स्तदनंतरम् ।
पुत्रीरूपेण सादेवी, हिमाद्रे र्दैवतात्मनः ॥७१॥

दक्षजीकी यज्ञमें सतीजी भस्म हो गई थीं । उसके पश्चात् देवतात्मा हिमालयकी पुत्री रूपसे, ॥ ७१ ॥

संजाता यत्र रुद्राणी, सर्वाम्बा सर्वनायिका ।
नातिदूरे च तत्स्थानं, वत्स ! दिव्य मनुत्तमम् ॥७२॥

सारे जगत्की माता और सबकी अधीश्वरी साक्षात् शिव-पत्नी वह देवी जहां उत्पन्न हुई थी; हे पुत्र ! वह दिव्य और अति उत्तम स्थान इस मतंगस्थानके पास ही स्थित है । (इसे देशभाषामें "कच्चोरा" कहते हैं) ॥ ७२ ॥

हरिप्रयाग इत्येतत्, तीर्थं पश्य समीपतः ।
स्नात्वा तस्मिन्कुवृत्तोऽपि, हरिलोक मवाप्स्यति ॥७३॥

उसके समीप ही "हरि प्रयाग" नामक तीर्थको देखो ! जिसमें स्नान करके अत्यन्त दुराचारी भी विष्णुलोकको प्राप्त होते हैं। (यह "हरसल" नामसे प्रसिद्ध है) ॥ ७३ ॥

गुप्तप्रयाग इत्यन्यद्, गुप्त मेतन्महीतले ।
अध ऊर्ध्वश्च सप्तानां, गुप्ताघौघनिबर्हणम् ॥७४॥

उसीके पास "गुप्तप्रयाग" नामक एक और तीर्थ भी है। पहले की सात पीढ़ियोंके पितरोंके तथा आगामी सात पीढ़ियोंमें होनेवालोंके गुप्त पाप समूहको नष्ट करने वाला यह तीर्थ, पृथ्वी पर अत्यन्त गुप्त है (इसे भाषामें "कुतिघाट" कहते हैं) ॥ ७४ ॥

श्यामगंगांबुसंगोऽपि, दृश्यतां तस्य पार्श्वतः ।
देदीप्यतेऽङ्ग ! यो दिव्य विशालपुलिनश्रिया ॥७५॥

हे पुत्र ! उसकी बगलमें भागीरथीके साथ श्यामगंगाके जलका संगम भी देखो ! जो अलौकिक और सुन्दर विशाल रेती के मैदानकी शोभासे देदीप्यमान है। (इसे "श्यामघाट" कहते हैं) ॥ ७५ ॥

दर्शनात् स्पर्शनात् स्नानात्संपद्ब्रह्मोत्तरोत्तरम् ।
श्रद्धया सेवनीयं वै, सर्व मेतद्यथाविधि ॥७६॥

दर्शनसे, स्पर्शनसे और स्नानसे यह उत्तरोत्तर ऐश्वर्य बढ़ाने वाला है। इस प्रकार ऊपर कहे हुए ये सब तीर्थ श्रद्धासे विधिपूर्वक सेवन करने योग्य हैं ॥ ७६ ॥

वामभागे च गंगाया, वरीवर्ति महत्पदम् ।
विश्वनाथपुरी साक्षा, द्विश्वेशो यत्र राजते ॥७७॥

गंगाजीके बाँये किनारे महान् सुन्दर स्थान विश्वनाथपुरी विद्यमान है; जहां साक्षात् विश्वेश्वर विराजते हैं (यह "धराली" नामसे प्रसिद्ध है) ॥ ७७ ॥

अस्ति यत्र महाभागा, धारा चोत्तरवाहिनी ।
श्रीकंठ निःसृता हत्याहारिणीति सुविश्रुता ॥७८॥

जहां श्री कंठ पर्वतसे निकली हुई, उत्तरवाहिनी महान् माहात्म्य शालिनी "हत्याहारिणी" नामसे प्रसिद्ध जलधारा है ॥ ७८ ॥

उषित्वातु निशामेका, मत्र यः श्रद्धयान्वितः ।
त्रिवेण्यां स्नाति वै तस्य, दह्यते पातकं महत् ॥७६॥

जो यहांपर श्रद्धायुक्त होकर एक रात्रि भी निवास करके, भागीरथी, देव गंगा और हत्याहारिणी इन तीनोंके विचित्र संगमस्थान त्रिवेणीमें स्नान करते हैं, उनके महापातक भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ७६ ॥

क्षीर गंगा समायोगो, गंगया यत्र तत्पुरे ।
तत्राप्यत्युत्तमे तीर्थे, स्नातव्यं भूतिमिच्छता ॥८०॥

उसी पुरी में जहां गंगाजीके साथ क्षीरगंगा (यानी दूध गंगा) का संगम है, इस उत्तम तीर्थमें भी ऐश्वर्यकी इच्छा वाले पुरुषको स्नान करना चाहिये ॥ ८० ॥

जयन्त्यन्याश्च गंगायाः कूलयोरुभयोरपि ।
पुण्यदाः पुण्यचरिताः, सरितोऽनेक संख्यया ॥८१॥

गंगाजीके दोनों किनारोंपर और भी अनेकों पुण्यदायिनी और पुण्य चरित्र वाली जलधाराएँ विराजमान है ॥ ८१ ॥

तस्योपरि महाशृंगं, श्रीकंठं पश्य वै मुने ! ।
साक्षाच्छ्रीकण्ठसदनं, वैकुण्ठादिनिषेवितम् ॥८२॥

हे मुने ! उसके ऊपर श्री कंठ नामक महान् सुन्दर पर्वतके

शिखरको देखो ! वह साक्षात् शिवजीका निवासस्थान और विष्णु आदि देवताओं द्वारा सेवित हैं ॥ ८२ ॥

सर्व मेतन्महत्स्थानं, पुण्यात् पुण्यतरं भुवि ।
मुनीनां रम्य निलयः, साक्षाद्गंगाविहारभूः ॥८३॥

यहां कहे हुए सब स्थान भी भूमंडलमें अत्यन्त श्रेष्ठ और पवित्रसे भी पवित्रतर हैं। मुनियोंके रमणीक निवास स्थान हैं, और साक्षात् गंगाजीकी विहार भूमि है ॥ ८३ ॥

गंगोत्तर्याश्च गंगाया, माहात्म्यं निस्तुलं परम् ।
वर्णनंतस्य सम्पूर्णं, कर्तुं कः प्रभवेन्मुने ! ॥८४॥

हे मुने ! गंगोत्तरी और गंगाजीका माहात्म्य अति श्रेष्ठ, अतुल और अपार है। उसको पूरा २ कथन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ॥ ८४ ॥

लब्ध्वा तु मानुषं देहं, न कुर्यात्सांपरायिकम् ।
योऽत्र हन्त स वैधेयः काक वद् व्यर्थ जीवनः ॥८५॥

इसलोकमें मानवशारीर मिलकर भी जो परलोक संबन्धी पुण्य कर्म आदि नहीं करता, वह मूर्ख काकके तुल्य निरर्थक जीवन विताता है ॥ ८५ ॥

देहादस्ति परो ह्यात्मा देहान्ते तस्य का गतिः ।
इति चिन्तयितुं जन्तुः कः प्रभुर्मनुजेतरः ॥८६॥

देह से भिन्न आत्मा है, देह के अन्त में उस की क्या गति होगी ? इस प्रकार विचार करने में मनुष्य से अन्य कौन प्राणी समर्थ होता है ॥ ८६ ॥

आहार पशु कर्मादि भोगेष्वधिक मोदनम् ।
पुंबुद्धे रर्थ्य मानश्चेन्न पुमान् स महान् पशुः ॥८७॥

आहार, मैथुन आदि भोगों में अधिक अधिक आनन्द करना ही मनुष्य बुद्धि का परम अभीष्ट हो तो, फिर वह मनुष्य नहीं, महान पशु है ॥ ८७ ॥

किं मे श्रेयः किमश्रेयो विचार्येदं नृदेहिना ।
श्रेयोमार्गेषु नितरां चरितव्यं सुमेधसा ॥८८॥

मेरा क्या श्रेय है, क्या अश्रेय है, इस का विचार करके बुद्धिमान पुरुष सदा श्रेयो मार्गों में ही प्रवृत्ति करें ॥ ८८ ॥

ब्रह्मनिष्ठैव सर्वेषां श्रेयसां श्रेय उत्तमम् ।
विषयासंग संत्यागात् प्राप्यतेऽब्धाकटाक्षतः ॥८९॥

ब्रह्ममें निष्ठा ही सब श्रेयों में महान श्रेय है। विषयासक्ति के परित्याग से, तथा जगन्माता श्रीगंगाजी के अनुग्रह से यह ब्रह्मस्थिति प्राप्त होती है ॥ ८९ ॥

देशकालादि परिधिरहंत्वमिति भेद धीः ।
भोक्ता भोग्य मिति द्वैतं यत्र न ब्रह्म तत्परम् ॥९०॥

देश काल आदिके परिच्छेद, "मैं, तुम" इस प्रकार की भेद बुद्धि, एवं भोक्ता, भोग्य इस प्रकार के द्वैत भी जहां नहीं रहते, वह परब्रह्म है ॥ ९० ॥

सूर्यचन्द्रौ च नक्षत्राण्यहोरात्रादि यत्र नो ।
न च शून्यं न चाशून्य मद्भुतं ब्रह्म तत्परम् ॥९१॥

सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र, तथा दिन रात आदि भी जहां नहीं हैं, जो शून्य भी नहीं, अशून्य भी नहीं वह आश्चर्य वस्तु परब्रह्म है ॥९१॥

न योषा न पुमान् षण्डो न च मूर्त मममूर्तकम् ।
न च तादृङ् न चैतादृक् तादृशं ब्रह्म तत्परम् ॥६२॥

जो स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, नपुंसक भी नहीं, साकार नहीं, निराकार भी नहीं, जो परोक्ष नहीं, अपरोक्ष भी नहीं, जो उस प्रकार का है, वह परब्रह्म है ॥ ६२ ॥

ब्रह्म सत्य मसत्सर्वं नेतोऽन्यत्स्वप्नसन्निभम् ।
देशकालादिकलना कलितं यदिदं जगत् ॥६३॥

ब्रह्ममात्र सत्य है, अन्य सारा असत्य है; देश, काल आदियों की कल्पना द्वारा कल्पित, तथा स्वप्न के सदृश, यह परिदृश्यमान जगत् इस ब्रह्म से भिन्न सत्ता वाला नहीं है ॥ ६३ ॥

ब्रह्मैव सकलं साक्षा दिति निष्ठाऽपरोक्षतः ।
पुमर्थः परमो ज्ञेयः परमानन्दवर्षिणी ॥६४॥

"स्व स्वरूप ब्रह्म ही यह संपूर्ण जगत्," इस प्रकार की परमानन्द को वर्षने वाली अपरोक्ष निष्ठा को ही परम पुरुषार्थ जानना चाहिये ॥ ६४ ॥

विवेक विधुराणां तु क्षुद्रानन्द विधायकाः ।
पुमर्थपद मायान्ति कामिनी काञ्चनादयः ॥६५॥

क्षणिक आनन्द को देने वाले कामिनी काञ्चन आदि ही विवेक रहितों के लिये तो परम पुरुषार्थ भाव को प्राप्त हो जाते हैं ॥६५॥

पूर्वप्रज्ञावशादेवं सस्पृहो वाऽस्तु निः स्पृहः ।
श्रद्धयाऽऽराधयन् देवी मुत्तमां गति मृच्छति ॥६६॥

पूर्व संस्कार से इस प्रकार सकाम हो या निष्काम, श्रद्धापूर्वक देवी की आराधना करने वाला श्रेष्ठ गति को प्राप्त हो जाता है ॥६६॥

एक मेव परं तत्त्वं ब्रह्म चेश्वर पूरुषौ ।
शिवो विष्णुश्च गंगा चेत्याख्याभेदैः प्रकीर्त्यते ॥९७॥

एक परम अद्वितीय तत्त्व को ही ब्रह्म, ईश्वर, पुरुष, शिव, विष्णु, गंगा इत्यादि अनेक नामों से ऋषि लोग व्यपदेश करते हैं ॥९७॥

असारे खलु संसारे सारं सत्यञ्च किञ्चन ।
अन्यत् किमस्ति संप्रार्थ्यं प्रार्थ्यतेऽथापि मोहतः ॥९८॥

अहो ! निःसार इस संसार में ईश्वर के सिवाय प्रार्थना करने योग्य, सार और सत्य वस्तु अन्य क्या है ? तथापि अविवेक से लोग प्रार्थना करते हैं ॥ ९८ ॥

भक्तिं कुर्वन्तु मनुजाः कथञ्चित् परमेश्वरे ।
अर्थकामाश्च सेवन्तां तद्दत्तार्थै स्तमेव हि ॥९९॥

मनुष्य क्लेश करके भी परमेश्वर में भक्ति बढ़ावें । अर्थ कामी लोग भी परमात्मा की कृपा से प्राप्त हुए धन से उस परमात्मा की ही सेवा करें ॥ ९९ ॥

ईश्वरः कल्पतरुवत् कामितार्थ प्रदायकः ।
सर्व शक्तं तमुत्सृज्य कंयाति शरणं नरः ॥१००॥

ईश्वर कल्पवृक्ष के समान अभीष्ट विषयों को प्रदान करने वाला है। सर्व शक्तिमान उनको छोड़कर मनुष्य किस की शरण में जाता है ॥ १०० ॥

अहं पिताऽस्य जगतो मत्पिता परमेश्वरः ।
फलदाता च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्व बुद्धिगः ॥१०१॥

मैं इस जगत का स्रष्टा हूं; हमारा भी स्रष्टा परमेश्वर है। सर्व

बुद्धियों में स्थिति करने वाले अन्तर्यामी सर्वज्ञ वे ही सब प्राणियों को कर्म फल देते हैं ॥ १०१ ॥

शक्ति र्न चेत् पृथक् शक्ताद् गंगैवेश्वररूपिणी ।
ता मेतु शरणं मर्त्यो मातरं स्वेष्ट सिद्धये ॥१०२॥

यदि शक्ति शक्तिमान से भिन्न नहीं है, तो श्री गंगाजी परमेश्वर रूपिणी ही हैं। मनुष्य अपनी इष्ट सिद्धि के लिये उस जगन्माता की शरण में जावें ॥ १०२ ॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि, संवाद मिममावयोः ।
गंगोत्तरपरं पुण्यं, सोऽपि याति परां गतिम् ॥१०३॥

और जो हम दोनोंके इस गंगोत्तरी विषयक पुण्यप्रद संवाद का पाठ अथवा श्रवण करे, वह भी परम गति को प्राप्त होता है ॥ १०३ ॥

भद्रं भवतु ते पुत्र ! भद्रञ्च जगतोऽनिशम् ।
इत्युक्त्वा सर्वतो भद्रं, विधिश्चोपरराम ह ॥१०४॥

हे पुत्र ! तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो। और संपूर्ण जगत्का भी सर्वदा कल्याण हो ! इस प्रकार सबका सब प्रकार कल्याण कहकर, ब्रह्माजी तूष्णीं भाव, यानी आनन्दमय शांत भावको प्राप्त हुए ॥१०४॥

गंगे ! मात र्नमस्तुभ्यं, गंगे ! मातर्नमोनमः ।
पावनी पतितानां त्वं पावनानां च पावनी ॥१०५॥

हे गंगे ! हे माता ! तुमको नमस्कार हो ! हे गंगे ! हे माता ! तुमको बारम्बार नमस्कार हो ! तुम पतितोंको पवित्र करने वाली हो ! और पवित्रोंको भी पवित्र करने वाली हो ॥ १०५ ॥

इति श्रीनारदोगंगां, गायन्गायन् मुहुर्मुहुः ।
पितरञ्च नमस्कृत्य, निर्जगाम सभान्तरात् ॥१०६॥

इस प्रकार श्री नारदजी बारम्बार श्री गंगाजीका माहात्म्य गाते हुए, पिता ब्रह्माजीको नमस्कार कर, उस महासभाके मध्यसे चले गये ॥ १०६ ॥

नमस्तुभ्यं महाभागे ! भगीरथ रथानुगे ।
नमस्तुभ्यं जगन्नाथे ! गंगे ! त्रिपथगामिनि ! ॥१०७॥

हे महाभागे ! हे भगीरथ के पीछे चलने वाली ! तुझको नमस्कार हो ! हे जगदीश्वरी ! हे गंगे ! हे त्रिपथ गामिनी ! अर्थात् तीन मार्गसे चलने वाली ! तुझको नमस्कार हो ! ॥ १०७ ॥

विश्वेश्वर प्रेरणयैव कृत्वा
विश्वेश्वरीक्षेत्रमहत्त्वमेतत् ।
विश्वेश्वरायैव समर्पितं तद्
विश्वेश्वरप्रीतिकृदस्तु नित्यम् ॥ १०८ ॥

यह श्री विश्वेश्वरी गंगाजीके क्षेत्रका माहात्म्य साक्षात् श्री विश्वनाथजीकी प्रेरणासे ही रचकर, श्री विश्वनाथजीको ही समर्पण किया गया है । यह सर्वदा श्रीविश्वनाथजी को प्रीतिकर हो ॥१०८॥

इति श्रीगंगोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्ये श्रीगोमुखमार्कण्डेयादि
तीर्थवर्णनं नाम द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥





श्री गोमुख गुहा



ध्यानावस्थित
श्री स्वामी तपोवनम्
गङ्गोत्री – १९५२

❀ प्रस्तावना ❀

श्री गोमुखी यात्रा की प्रथमावृत्ति सन् १९३५ ई० में प्रकाशित हुई थी। परन्तु हिन्दी अनुवाद न होनेके कारण संस्कृत न जानने वाले पाठकों के लिये इसकी उपयोगिता कुछ कम हो गई थी। इसलिये इस वार अनुवादके सहित इसे प्रकाशित करनेका उत्साह किया। और गंगोत्तर एवं गोमुखके महत्वका उल्लेख करने वाले कुछ श्लोक भी पूज्य श्री स्वामीजी से ही रचित श्री गंगास्तोत्रसे उद्धृत करके इसमें संयोजित किये हैं।

प्रकृत श्लोकोंका अनुवाद दो साल पहले चातुर्मास्यमें श्री गोमुख स्थानमें पूज्य स्वामीजीके साथ निवास करते समय स्वामीजीके चरणोंमें ही बैठकर लिखा था। आशा है इस रूपमें यह छोटा ग्रन्थ गंगाजी तथा हिमालयके प्रेमियोंके लिये महान् उपकारक एवं हर्षदायक होगा।

श्री स्वामीजीके संस्कृत भाषामें लिखित जीवन चरित्रमें लिखते हैं कि :—

अष्टादशे वयसि तेन विभाकराख्यं
काव्योत्तमं व्यरचि केरल गीर्मयं यत्।
अस्तावितस्य कविभिः कवितानुरक्तिः
प्रावादि हृष्ट मनसा विजयाय चाशीः ॥

अठारह सालकी आयुमें ही काव्य रचनामें प्रवृत्त होकर विद्वत्प्रशंसाके पात्र हुए, स्वामीजीकी विख्यात तूलिकासे निस्सृत इन पद्योंके माधुर्य तथा गुण पुष्कलताके विषयमें क्या कहना? सहृदयोंके

हृदय ही इसमें प्रमाण है। किञ्च गोमुखके बारे में कुछ लिखनेका अधिकार भी प्रतिवर्ष गोमुख प्रान्तमें जाकर निवास करने वाले, साक्षात् अनुभवी श्री स्वामीजीसे बढ़कर अन्य किसको होगा ?

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस हिमालय प्रान्तमें श्री स्वामी जी के निवाससे, तथा श्री गंगोत्तरी क्षेत्र माहात्म्य, गोमुखी यात्रा, एवं सौम्य काशीश स्तोत्र, बदरीश स्तोत्र, आदि नाना सरस सद् ग्रन्थोंकी रचनासे भी, श्री गंगोत्तरी एवं गोमुख जैसे पुण्य क्षेत्रोंका तथा उत्तरा खण्डका महत्त्व विशेष काफी प्रचरित हुआ है। इसलिये हम सब और उत्तरा खण्ड एवं गंगाजीके भक्त वर्ग भी श्री स्वामीजीके सदा कृतज्ञ और ऋणी हैं। श्री स्वामीजीके पूजनीय चरण कमलोंमें श्रद्धा और भक्ति होनेके लिये भी इससे बढ़कर और क्या हेतु चाहिये ?

उत्तरकाशी
२५-१२-१९४५

इति सुधीजन विधेय
पं० बृन्दाप्रसाद पण्डा
श्री गंगोत्तरी, हिमालय

PREFACE *

Gomukh is situated in the icy regions of Himalayas nearly 18 miles up from the famous Gangotri. It is the real source of the holy Ganges. The Ganges is invisible beyond Gomukh on account of the eternal snow. The path from Gangotri to Gomukh is extremely difficult and dangerous also. But the natural scenery of the place is marvellous, sublime, divine and unprecedented. Here the spiritual vibrations are indeed thrilling and highly elevating. One is in tune with the nature and the Nature's Lord and enters into the meditative mood without any effort.

I, after my first visit to Gomukh in 1932, composed these slokas in a religious and poetical style from my impressions of the place. I was extremely Joyful and inspired by the Divine beauty and sanctity of the place during my journey up and down.

May these slokas bring such a divine joy, supreme bliss and inspiration to the readers also.

Uttar Kashi
1-12-1935

SWAMI THAPOVANAM.

---

* प्रथमावृत्तिकी प्रस्तावना

श्रीगोमुखीयात्रा ।

वन्दे वन्द्यपदाम्बुज द्वयममुं राजन्यवीराग्रणीं
यस्यैकाग्रमहोग्रदीर्घतपसा नैस्तुल्यसीमाजुषा ।
क्षेत्रं गोत्रवरेण्यमूर्द्धगमिदं जेजीयतेऽत्राच्युत-
क्षेत्रस्पर्धि समस्तमस्तकनतं गंगोत्तरख्यातिमत् ॥१॥

श्री गंगाजीकी साक्षात् उत्पत्ति स्थान गोमुखी अथवा गोमुख श्री गंगोत्तरीसे लगभग १७-१८* मील आगे है, इस गोमुखके मार्गका वर्णन करनेकी इच्छासे पहले पूज्य स्वामीजी प्रथम श्लोकसे राजा श्रीभगीरथको नमस्कार करते हैं :—

वीर पुरुषोंमें जो श्रेष्ठ हैं और जिनके दोनों चरण कमल बन्दनीय हैं, ऐसे उन राजा भगीरथको मैं नमस्कार करता हूं, जिनकी निस्तुल एकाग्र महान् घोर और चिरकालीन तपस्याके प्रभावसे हिमालयके मस्तक देशमें स्थित यह क्षेत्र वैकुण्ठ सदृश सर्वदेव मनुष्योंके मस्तकसे नमस्कृत होता हुआ गंगोत्तर इस नामसे ख्यातिमान होकर इस भूतलमें सर्वोत्कृष्टतासे विराजता है ॥१॥

धन्ये ! धन्यभगे ! भगीरथशिले ! सौभाग्य भाग्याम्बुधे !
कार्त्तस्न्येन, नमस्करोमि शतश स्त्वत्पादपङ्केरुहम् ।

---

* १८ मील वृद्धोक्तिके अनुसार लिखा करते, आजकल के सर्वे नकशे के अनुसार ११ मील है।

त्वत्पृष्ठे ननु निष्ठुरं नरपतिः स्थित्वा तपस्तप्तवान्
यन्मूलः खलु भूतलेऽमृतधुनी सञ्चार भाग्योदयः ॥२॥

इस श्लोकसे गंगोत्तरी धाममें स्थित श्री भगीरथ शिलाके लिये नमस्कार करते हैं :—

हे धन्ये ! हे धन्य आकार वाली भगीरथ शिले ! हे सौभाग्य तथा भाग्यको महान् अम्बुधे ! कृतज्ञमात्रसे शत सहस्त्रवार तुम्हारे चरण कमलोंको मैं नमस्कार करता हूं। तुम्हारे पृष्ठदेशमें स्थित होकर राजा भगीरथने प्रचण्ड तपस्या की थी, जिस तपस्याका महिमासे इस मृत्युलोकमें श्री गंगाजी के आगमनका भाग्योदय हुआ ॥२॥

लक्ष्मीःक्रीडति यत्र तत् सुरभिलं पश्यामि लक्ष्मीवनं
भुञ्जे चित्रविचित्रदृश्यसुषमां पञ्चेन्द्रियाह्लादिकाम् ।
दुःखास्पृष्टसुखं सुयोगिसुलभं स्वर्गेऽपि यद्दुर्लभं
तन्मेभाति च चित्तसंयममहायासं विनाप्यञ्जसा ॥३॥

अथ इस श्लोकसे श्रीगोमुखके मार्गमें श्रीगंगोत्तरीके निकटस्थ लक्ष्मी वनका वर्णन करते हैं :—

जहाँ सर्वदा साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी विहार करती हैं उस मनोज्ञ सुरभिल लक्ष्मीवनको मैं आगे देख रहा हूँ, और उसमें चक्षुरादि पांच इन्द्रियोंको भी आनन्द देनेवाली आश्चर्यदायक नाना दृश्योंकी शोभाको मैं अनुभव कर रहा हूँ। अहो ! दुःखके स्पर्शसे शून्य स्वर्गमें भी दुर्लभ महान् योगी जनोंको ही सुलभ जो अलौकिक सुख है, वह चित्तनिरोधके महान् क्लेश बिना ही मुझे प्राप्त हो रहा है। इस लक्ष्मीवनको गंगावनके नामसे भी निर्देश करते हैं ॥३॥

एतादृक्षवनान्तरेषु नितरां वैरक्त्य योगेन ये
रागद्वेष भयाकुलं जगदिदं विस्मृत्य निर्वासनाः ।
दीव्यद्दिव्यविचित्रसृष्टिरचनामाहात्म्यतस्तत्पतिं
ध्यायन्तःशिवमद्वितीय मृषयो जीवन्ति तेभ्यो नमः ॥४॥

प्रकृत श्लोक से प्रसंगवश एकान्तवासी ब्रह्मनिष्ठ महात्मा पुरुषों के लिये नमस्कार करते हैं :—

ऐसे महान् वनान्तरों में जो ऋषिलोग अत्यन्त वैराग्य भावमें निष्ठित होकर और राग द्वेष भयसे सम्पूर्ण इस जगतका विस्मरण करके वासनाओंके उच्छेदपूर्वक नाना प्रकारकी दिव्य उज्ज्वल इस सृष्टि रचनाके वैशिष्ट्यको देखकर उसके रचयिता अद्वितीय परमात्माको ध्यान करते हुए निवास करते हैं, उनके लिये नमस्कार है ॥४॥

नालं दुष्कृत दूषितः खलु पुमां स्त्वत्पार्श्वमागन्तुम-
प्यन्तर्द्वारसुवा कथ नु स भवत्प्रोत्क्रान्तये स्यात्प्रभुः ।
आख्यानं तु तवाघमर्द्दिनि ! शुभे ! सम्पन्नमेतत्कथं
मन्ये मूढ़परंपरेति सुतरां गौरीत्वदर्थोज्झितम् ॥५॥

और इस पद्यसे एक मील कुछ आगेकी अघमर्द्दिनी नामक गुफाका वर्णन करते हैं । मार्गमें इस गुफाको उल्लंघन करना पड़ता है । पहले इस गुफाको लांघना कुछ अधिक कठिन था, आजकल कठिनाई कुछ कम होती जा रही है :—

अल्प पापसे भी दूषित पुरुष तुम्हारे निकट पहुंचनेके लिये भी समर्थ नहीं होता, फिर तुम्हारे अन्दरके छिद्रसे तुम्हारा अतिक्रमण करनेके लिये वह कैसे समर्थ होगा ? हे शुभे ! अघमर्द्दिनी अर्थात् तुम्हारे

जठर द्वारा तुम्हें लंघनेवालेका पाप नष्ट करनेवाली, इस प्रकारका नाम तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ ? मैं मानता हूँ कि केवल मूढ़ परम्परासे ही यह नाम आगत हुआ; क्योंकि काली कन्याको गौरी नामसे व्यपदेश करना जिस प्रकार अर्थ शून्य है, उसी प्रकार तुम्हारा यह नाम भी अर्थ शून्य है। भाव यह है, कि महा सुकृती लोग ही इस गुफाके द्वारा ऊपर यात्रा करनेमें सामर्थ्यवान होते हैं, पापी नहीं ॥ ५ ॥

सूर्यस्पर्शिशिलोच्चयोच्चशिखर प्रौढच्छविच्छायया
नानावर्ण युतं नितान्तनिपतन्नीचैर्महारंहसा ।
हैमं हेमनिभं सुमञ्जु सुमनो गङ्गाख्यमेतज्जलं
स्वस्मिन्मां निरुणद्धिहन्त न इतोगन्तुं समर्थोऽस्म्यहम् ॥६॥

दो मील आगे जाकर देवघाट नामसे प्रसिद्ध देवगंगाका इस पद्यसे वर्णन करते हैं :—

महान् उच्च शिखरोंमें सूर्य किरणोंके स्पर्शसे उत्पद्यमान प्रौढ़ कान्तिके प्रति बिम्ब से रक्त नीलादि नाना वर्णवाला होता हुआ, बड़े वेगसे सर्वदा नीचे गिरनेवाला सुवर्ण सदृश मनोहारी देवगंगा नामक यह हिमजल अपने महान् सौन्दर्यमें मुझको निरोध करता है, अतएव यहांसे आगे पदन्यास करनेके लिये मैं समर्थ नहीं होता हूँ ॥ ६ ॥

भ्रातर्भूर्ज ! नमस्कृति स्तवपदे पुण्यातिपुण्यात्मन-
स्त्वां निन्दन्ति कुयोनिरिति ये धिक्तान् सुधीमानिनः ।
स्थावर्यं तव गाङ्गनीरलहरीसंघट्टिताङ्गस्य य-
द्धन्यं धन्यमतीवधन्यममरेन्द्राद्यैश्च संप्रार्थितम् ॥७॥

यहांसे भी आगे जाकर "भूर्जवासा" में गंगा किनारे खड़े हुए एक भूर्जवृक्षको देखकर भक्तिपूर्ण भाषामें उसका वर्णन करते हैं :—

हे भाई भूर्ज्ज ! सुकृतियोंसे भी महा सुकृती तुम्हारे चरणोंमें अनेक वार नमस्कार है; निकृष्ट स्थावर योनि कहकर तुम्हारी जो निन्दा करते हैं या तिरस्कार करते हैं, उन पण्डिताभिमानियोंको धिक्कार है। क्योंकि गंगाजलके प्रवाहसे सर्वदा संघट्टित हुआ अङ्ग जिसका ऐसे जो तुम्हारा स्थावरपना है, वह धन्य है, अत्यन्त धन्य है, अति दुर्लभ है, इन्द्रादि देवताओंसे भी सम्प्रार्थित है ॥ ७ ॥

आकीर्णा बहुगण्डशैलशिशुभिः प्रालेयसङ्घैस्तथा
विस्तीर्णा खलु सञ्चकास्ति पुरतः श्री पुष्पवासस्थली ।
आपूर्णा चमहाद्भुतैर्द्युतिमयैर्दिव्य प्रसूनैर्नृणा
मानन्दामृतवर्षिणी दिविपदां श्रीनन्दनोद्यानवत् ॥८॥

आगे श्रीगोमुखके निकटस्थित पुष्पवास (फूलवासा) नामक विशाल मैदानका इस श्लोकसे वर्णन करते हैं :—

बहुत क्षुद्र पाषाणोंके और हिमखण्डोंके समूहसे व्याप्त, अति मनोहर तथा विस्तीर्ण यह पुष्पवास स्थान यहां आगे विराजमान है; जो महान् अद्भुत शोभायमान नाना प्रकारके दिव्य पुष्पोंसे परिपूर्ण होता हुआ देवताओंको जिस प्रकार नन्दनोद्यान है, उस प्रकार सदा मनुष्यों को आनन्दरूपी अमृतकी वर्षा करता रहता है ॥ ८ ॥

तीर्थानामपि तीर्थमुत्तममिदं पुंसांपुमर्थप्रदं
रम्याणामपि रम्यमद्भुतयशः पूतात्प्रपूतंमहत् ।
साक्षाद्विष्णुपदोद्भवं हिमगुहाच्छिद्रेण चात्रोदितं
गंगामूलमनन्य भक्ति सुलभं श्रीगोमुखाख्यं भजे ॥९॥

अब इस श्लोकसे साक्षात् श्रीगोमुखका वर्णन करते हैं :—

सर्व तीर्थोंमें भी उत्तमतीर्थ मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाले, अत्यन्त रमणीय एवं अद्भुत चरित्र वाले, पवित्रसे भी महान् पवित्र, साक्षात् विष्णु चरणसे उत्पन्न होकर हिमगुहाके छिद्रसे प्रकट हुए और अनन्य भक्तिमात्रसे सुलभ श्रीगोमुख नामक इस दिव्य गंगाजीके मूल स्थानका मैं आसेवन करता हूँ ॥ ६ ॥

गंगे! गोमुखि! तुभ्यमस्तु मनसा वाचा च तन्वा नम-
स्त्वां दृष्ट्वा तव निर्मलेऽमृतसमे स्नात्वा च भद्रे जले।
मन्ये धन्य जनिर्ममेति सुतरां धन्योऽस्मि धन्योऽस्म्यहं
भूयो भूयइवानतोऽस्मि चरितार्थोऽस्मि त्वदासेवनात् ॥१०॥

और अन्तमें इस श्लोकसे गोमुखके प्रति नमस्कार पूर्वक अपनी कृतार्थताको प्रकट करते हैं :—

हे गोमुखि! हे गंगे! तुम्हें मनसे शरीरसे तथा वचनसे भी नमस्कार है। मैं मानता हूँ कि तुम्हारा दर्शन करके और तुम्हारे निर्मल अमृत तुल्य तीर्थजलमें स्नान करके मेरा जन्म अतीव धन्य हुआ। मैं धन्य हूँ, मैं अतीव धन्य हूँ, फिर भी बार बार तुम्हें नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार तुम्हारे आसेवनसे मैं अत्यन्त कृतार्थ हूँ ॥ १० ॥

श्रीगंगास्तोत्रसंग्रहः।

जय जय जगदम्ब! श्रीगल श्रीजटायां
जय जय जयशीले! जह्नुकन्ये! नमस्ते।

जय जय जलशायि श्रीमदंघ्रिप्रसूते !
जय जय जय भव्ये ! देवि ! भूयो नमस्ते ॥१॥

हे जगदम्बे ! तेरी जय हो ! जय हो ! श्री कंठ शिवजीकी तेजोमय जटामें विराजमान, हे जह्नु कन्ये ! तेरी जय हो ! तुमको नमस्कार है। श्री विष्णुजीके चरणकमलसे उत्पन्न हे देवि ! हे मंगल स्वरूपिणि ! तेरी अनेक बार जय हो ! और तुम्हें अनेक बार नमस्कार है ॥ १ ॥

त्रिपथ पथिक पाथः स्रोतसा सिद्धमूर्ति-
र्दिनकर कुलभूषारत्न यत्नोदयोत्था ।
प्रणतजन सुरद्रुः पावनी पावनानां
जयति जगति गङ्गा भाग्यपूगोजनानाम् ॥२॥

स्वर्ग लोक, भूलोक, पाताल लोक इन तीन लोकोंमें चलनेवाला जलस्रोत ही जिसका प्रसिद्ध आकार है; सूर्यकुलके भूषणमणि भगीरथजी की महान् तपस्यासे जो यहां प्रकट हुई है, जो भक्तजनोंको कल्पवृक्षके तुल्य हैं, जो सर्व पवित्र वस्तुओंको भी पवित्र करनेवाली है, और जो मूर्तिमान हुए मनुष्योंके भाग्य समुदाय की भांति भासती है, वह गंगा इस लोकमें सर्वोत्कृष्ट विराजती है ॥ २ ॥

गंगे ! मातरनुस्मरामि सततं त्वन्मूर्ति मत्यङ्कुतां
दैवीं दैवतदुर्लभां यमुनया वाचाऽन्न संपूर्णया ।
भक्तेनाथ भगीरथेन भगवत् पादैश्च पादार्चकै-
र्या नित्य समुपाश्रिता विजयते गङ्गोत्तरी सद्मनि ॥३॥

इस श्लोकसे श्री स्वामीजी महाराज गंगोत्री मन्दिरके अन्दर अन्य देवताओंके सहित विराजमान श्रीगंगाजीका स्मरण करते हैं :—

हे गंगे ! हे माता ! इन्द्रादि देवताओंको भी अति दुर्लभ; अत्यन्त अद्भुतदायक तुम्हारे इस दैवतरूपका मैं अनुस्मरण करता हूँ, जो यमुनाजी, सरस्वती, अन्नपूर्णा, भक्त भगीरथ और तुम्हारे पादपूजक भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्यसे भी सर्वदा भक्ति सहित उपासित होता हुआ, गंगोत्तरी धाममें सम्पूर्ण महिमासे विराजता है ॥ ३ ॥

तुहिन शिखरिशृंगे दिव्यसौभाग्यसंप-
न्महिमनि विहरन्तीं पुष्पवासे विशाले ।
सुकृति समधिगम्ये सम्यगालीजनाली-
त्रिदसितमलसाक्षीं नौमि गंगामभीक्ष्णम् ॥४॥

अनन्तर अब इस पद्यसे गोमुखके पुष्पवास स्थानमें क्रीड़ा करने वाली श्री गंगाजीकी स्तुति करते हैं :—

अलौकिक सौन्दर्य सम्पत्तिके माहात्म्यसे युक्त हिमालयके शिखर पर पुण्यवान पुरुषोंको ही गम्य, विशालमञ्जुल फूलवासा मैदानमें अनेक सखियोंके सहित सविलास विहार करने वाली, और कमनीय कान्ति वाली श्री गंगाजीकी सदा मैं स्तुति करता हूँ ॥४॥

पादांगुष्ठाद्वोदिता देवि ! विष्णो
र्गङ्गोत्तर्यां गोमुखी मस्तकाद्वा ।
गंगा गंगैवास्य बाधो न किञ्चित्
सर्वेशित्री सर्वथा हि त्वमम्ब ! ॥५॥

हे देवि ! तुम विष्णुके पादांगुष्ठसे उत्पन्न हो; अथवा गंगोत्तरी में गोमुख के ऊर्ध्व देशसे उत्पन्न हो । तुम गंगा तो सर्वदा गंगा ही हो, तुम्हारे महत्त्वकी ईषण्मात्र भी हानि नहीं; हे अम्ब तुम सर्वथा सर्वेश्वरी ही हो ॥ ५ ॥

अयि भगवति ! भव्य श्रीमुख श्रीनितम्बे
तुहिन मुकुर हर्म्यस्यान्त रन्तर्वधू वत् ।
अहह ! चरसि चित्रं त्वंतु माता जगत्या-
स्तदपि कथमसूर्यं पश्यतां यासि सह्रीः ॥६॥

गोमुखसे ऊपर गंगाजीके दर्शन नहीं मिलते हैं। उधर श्रीमुख नाम पर्वत पङ्क्तियोंके नीचे अनेक मील हिम संघातके भीतर गंगाजीकी धारा दूरसे आ रही हैं, इसको अलंकार भाषामें दो श्लोकोंसे वर्णन करते हैं :—

हे भगवती! भागीरथी! दिव्य मंगलमय श्रीमुख पर्वतके मनोहर नितम्ब देशमें हिमरूपी कांचके महलके अन्दर नवोढा अन्तःपुर वधूकी न्याई अहह! तुम विचरती हो! यह महान आश्चर्य है कि तुम तो सर्व जगतकी जननी हो! तथापि लज्जायुक्त होकर तुम किस प्रकार सूर्य को नहीं देखने वाली अवरोध स्त्री-सी बन जाती हो!

गोमुखके ऊपर चाररंग वाली चतूरंगी नामक हिमधारा जहां गंगोत्तरी हिमधारा नामक गोमुखकी बड़ी हिमधारामें आकर मिल जाती है, उस महान अद्भुत दिव्यप्रान्तको मनमें रखकर इस साहित्यरसपूर्ण सुन्दर श्लोककी रचनाकी गई है। बदरीनाथका महान् दुर्गम हिममार्ग इस प्रान्तसे ही चतूरंगी, कालिन्दी आदि हिमधारा तथा अर्वा नामक जलधारा होकर दिव्य हिममय उच्च पर्वतोंको अतिक्रमण करके आगे सरस्वती नदीके किनारे "माना" ग्रामके समीप "गस्तोली" में जाकर सम्मिलित होता है। और सुमेरु शृङ्गके सदृश सुवर्ण वर्णके महान् ऊंचे अनेक हृदयावर्जक सुन्दर शिखर भी इस प्रान्तसे स्पष्ट रूपसे दृष्टि गोचर होते हैं। विपुल, गंभीर, मनोहर आकार वाली यह गंगोत्तरी हिमधारा आगे सुप्रसिद्ध चौखम्बा शिखरके समीपवर्ती तथा अलकनन्दाके

उद्भव स्थान अलकापुरी पर्यन्त लम्बी पड़ी है। इसका दिव्य सौन्दर्य अनुपम और अवर्णनीय हैं। इस हिमधाराके किनारे ही आसपास शिवलिङ्ग, श्रीसुमेरु केदारनाथ आदि तथा भागीरथी पर्वत, सत्यपथ शिखर आदि पुराण प्रसिद्ध, बहुत सुन्दर दिव्यतर हिम शिखर भी विराजमान हैं। ये सब शिखर गोमुखसे दृश्यमान न होने पर भी अन्य प्रान्तोंसे दृष्टिगोचर होते हैं।

पापे मुखं समभवत् खलु नील नीलं
यस्यांऽम्ब ! तस्य तव वेश्म निरीक्षणेन।
श्रीमन्मुखं भवति भास्कर भासि नूनं
मन्येऽर्थवत्तत इदं तव वेश्मनाम ॥७॥

हे अम्ब ! जिसका मुख पाप कर्मोंसे नील वर्ण हो गया है अर्थात् काला पड़ गया है, तुम्हारे इस श्रीमुख स्थानके दर्शनसे ही उसका मुख सूर्यके सदृश तेजोमय और श्रीयुक्त अवश्य हो जाता है। इस कारणसे मैं मानता हूं कि श्रीमुख करके तुम्हारे स्थानका यह नाम अर्थ रहित रूढ़ि नहीं, किन्तु सार्थक ही है॥ ६॥

प्रसीद भगवत्यंब ! प्रसीद करुणांबुधे !
पुनीहि स्वात्मतुल्यं मे मनो मलमलीमसम् ॥८॥

हे माता ! हे भगवती ! तुम प्रसन्न हो ! हे करुणा जलधे ! तुम प्रसन्न हो ! रागद्वेषादि नाना मलोंसे मलीन हुए हमारे मनको अपने स्वरूपके तुल्य अर्थात् गंगाजलके सदृश पवित्र बनाओ ॥ ८॥

पश्यन्तु केचिदमलं जलमेव गंगे
त्यन्ये वयं तु भवयन्त्रविमुक्तिहेतुः।

श्रीमूल शक्ति रखिले श्वररूपरूपि-
ण्यानन्द कन्दमितिनित्यमुपास्महेत्वाम् ॥६॥

गंगा केवल निर्मल शुद्ध जलप्रवाह मात्र ही है, इस प्रकार कोई लोग माने तो मानें; हम तो संसार यन्त्रसे विमोचनका हेतु जगतकी कारणभूता आदि शक्ति, साक्षात् परमेश्वर स्वरूपिणी, निरतिशयानंदघन, जगजननी देवीके रूपसे भक्ति पूर्व तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ ६ ॥

किंवा मुण्डनतः किमस्ति जटया वैवर्ण्यवस्त्रेण किं
किंवा वस्त्र विसर्जनेन भसितालेपेन जापेन किम् ।
भिक्षान्नाशनतश्च किं व्रतशतै स्तीर्थेषु चाटाट्यया
विश्वाधीश्वरि!युष्मदंघ्रियुगलेभक्तिर्न चेन्निश्चला ! ॥१०॥

हे विश्वेश्वरि ! हे गंगे ! तुम्हारे चरण युगलमें निश्चल भक्ति न हो तो फिर मनुष्यको सिरका मुण्डन करनेसे क्या ? जटा रखनेसे क्या प्रयोजन ? काषाय वस्त्रके धारण करनेसे क्या ? वस्त्रको छोड़कर नंगा बननेसे क्या ? सम्पूर्ण शरीरमें भस्मका लेपन करनेसे क्या ? दिन रात बैठकर जप करनेसे भी क्या प्रयोजन ? भिक्षान्न का भोजन करनेसे भी क्या ? नाना प्रकारके व्रत और उपवासादिकोंसे क्या ? और तीर्थोंमें बहुवार भ्रमण करनेसे क्या ? भाव यह है कि जिसके मनमें भक्ति का संचार नहीं है, उसको पूर्वोक्त नाना वेष धारण तथा नाना आडम्बर ये सब व्यर्थ ही हैं ॥ १० ॥

गुहाच्छिद्रे वाद्रेः शिखरभुवि वा घोर गहने
श्मशाने वैकाकी वसतु वसतौ वा निजजनैः ।
महाभागे ! भागीरथि ! तव पदांभोजभजन
प्रमत्तंचित्तश्चेत् सतु परमयोगी सतु सुखी ॥११॥

गुहाके छिद्रमें अथवा पर्वतके उच्च शिखर देशमें अथवा भयंकर जंगलमें अथवा श्मशान भूमिमें एकाकी होकर निवास करो, अथवा अपने परिजनोंके साथ अपने गृहमें निवास करो। हे महाभागे ! हे मातृगंगे ! तुम्हारे चरणकमलके भजनमें यदि चित्त निमग्न हुआ हो तो, वही महान् योगी हैं; वही परम सुखी है ॥ ११ ॥

मंगला मंगलानां या पावनानां च पावनी ।
भुक्तिदा मुक्तिदा चास्यै जह्नुजायै नमो नमः ॥१२॥

जो सर्व मंगल मूर्तियोंकी भी मंगल मूर्ति है, सर्व पावन वस्तुओं की भी पावनी है, भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाली उस जाह्नवीको बार बार नमस्कार है ॥१२॥

प्रातः सायं दिनमथनिशा माससंवत्सरैश्चे
त्येवंकालः प्रचलति चलत्यायुरप्युग्रवेगम् ।
क्षुद्रान् भोगान् त्यजतु भजतु श्रीपदं प्रेमतोऽन्तः
स्वर्गंगायाः श्व इतिमति मान् मानवो मा ब्रवीतु ॥१३॥

प्रातः और सायं, दिन तथा रात्रि, मास और संवत्सर इस प्रकार काल व्यतीत होता है, एवं मनुष्यकी आयु भी अत्यन्त उग्र वेगसे चलती रहती है। क्षुद्र भोगोंका त्याग करो; भक्ति पूर्वक सुरनदी श्री गंगाजीके श्रीपदका भजन करो; बुद्धिमान मनुष्य आज नहीं कल करेंगे ऐसा कभी न कहे ॥१३।

प्रसीद गंगे ! भगवत्यभीक्ष्णं त्वत्प्रेमयाचेऽन्यदहं नयाचे ।
त्वदंबुधारावदखंण्डरूपं प्रसीदभूयोऽपि नमोंऽघ्रिपातैः॥१४॥

हे गंगे ! हे भगवती ! तुम प्रसन्न हो। बार बार तुम्हारी जल धाराकी न्याई अखण्ड रूप तुम्हारी भक्तिकी प्रार्थना करता हूँ, और कुछ

भी मैं याचना नहीं करता। चरणोंमें गिरकर अनेकानेक बार नमस्कार करता हूँ तुम प्रसन्न हो ॥१४॥

गंगोत्तर्यामिह गिरिगुहावेश्मनि त्वत्पदान्ते
पाद्म पीठे स्थिरमृजु कदा संस्थितः सन् सुखेन ।
न्यस्तस्वान्तस्त्वयि शिवतनो ! देवि ! कस्तूरिकाणां
संघर्षाश्मायित मिदमहं विस्मरिष्यामि देहम् ॥१५॥

हे मंगल मूर्ति ! हे देवि ! यहां श्रीगंगोत्तरीमें गिरि गुहाके अन्दर तुम्हारे चरणोंके समीप पद्मासनमें ऋजु और स्थिर रूपसे सुखतया अवस्थित होकर तुम्हारे स्वरूपमें चित्तका निरोध करता हुआ शिलाके सदृश स्तब्ध, निश्चल, तथा कस्तूरी मृगोंके कण्डूयन क्रीड़ाका स्थान हुए इस देहको मैं कब विस्मरण करूंगा ॥ १५ ॥

* इति शुभम् *



पूज्य श्री तपोवन स्वामिपाद प्रणीत, संस्कृत पुस्तकें

ईश्वरदर्शनम् अथवा श्री तपोवनचरितम् - प्रथमः खण्डः		२)
,, ,, ,, द्वितीयः	,,	५)
श्री सौम्य काशीशस्तोत्रम् (हिन्दी भाषा व्याख्यान के सहित)		३)
श्रीगङ्गोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यम् (श्री गोमुखीयात्रादिसंवलितम्)	,,	१)
श्रीबदरीशस्तोत्रम्	,,	॥)
श्रीगङ्गास्तोत्रम्		॥)
श्रीगङ्गासहस्रनामस्तोत्रम् (श्रीतपोवनीय गङ्गास्तोत्र संक्षेप सहितम्)		॥)
श्रीतपोवन शतकम् (पण्डित श्री बाल कृष्ण भट्ट शास्त्रि कृतम्)		॥)

मिलने का पता :—

पण्डित शशिधर

गङ्गोत्री धाम

पो० गङ्गोत्री, ज़िला टिहरी गढ़वाल

उत्तर प्रदेश, हिमालय

अथवा

The Mangalodayam Ltd.

P.O. Trichur, T. C. State

S. India